राजाजीः निश्चित लक्ष्य संजोए एक व्यक्ति

(Rajaji: Man With a Mission)

-जी. नारायणस्वामी

राजाजी के नाम से लोकप्रिय सी.राजगोपालाचारी की यह जीवनी प्रोफाइल्स इन करेज नाम की पुस्तक से ली गई है। राजाजी के इस जीवन परिचय में लेखक जी.नारायणस्वामी ने उनके संघर्ष, बेबाक व्यक्तित्व और फैसले लेने के निर्भीक अंदाज का बखूबी वर्णन किया है।

राजाजी के नाम से लोकप्रिय सी.राजगोपालाचारी के विषय में लिखना जितना आसान है, उतना ही मुश्किल भी है। आसान इसलिए है क्योंकि उनके जीवनकाल में भारत के राजनैतिक इतिहास की घटनाओं से भरी हुई 20वीं शताब्दी शामिल है, जिसमें स्वतंत्रता के लिए संघर्ष तो अंतर्निहित है ही, साथ ही गणतंत्र के आदर्शों पर आधारित एक नए स्वतंत्र लोकतंत्र का निर्माण भी शामिल है, जिसमें उनकी एक विलक्षण भूमिका रही थी। इस अवधि के दौरान राजाजी ने खुद को राजनैतिक और सामाजिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं में सक्रिय रूप से शामिल रखा, और वे घट रही घटनाओं के मात्र एक दर्शक ही नहीं थे अपितु एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने उन घटनाओं के क्रियान्वयन को आकार देने का प्रयास किया तथा अनेक मौकों पर वे अपने इस उद्देश्य में सफल भी रहे। यहां तक कि वे जब कभी इस कार्य में असफल भी हुए तो उन्होंने कभी भी कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई, सिवाय उन घटनाओं को छोड़कर, जब उन्हें यह विश्वास हो गया था कि उनके द्वारा की गई कार्रवाई गलत थी।

यह कार्य समान रूप से कठिन भी है क्योंकि वह एक रहस्यमय व्यक्तित्व के स्वामी थे, तथा उनका जीवन प्रतिवादों से भरा हुआ था जिन्हें आसानी से समझा नहीं जा सकता था अथवा उनसे सहमति नहीं जताई जा सकती थी। उनके व्यापक मस्तिष्क का गहन अध्ययन किए बगैर उनके विचारों की व्याख्या करना बेहद मुश्किल था। वास्तव में, उनके साथ चालीस वर्षों से भी अधिक समय तक जुड़े रहे आचार्य कृपलानी ने भी उनके चरित्र के वर्णन में कठिनाई महसूस की। *राजाजी* '93 *स्मारिका* (1) में प्रकाशित उनके एक लेख के अनुसार, ''मैंने हमेशा से ही व्यक्ति-विशेषों के चरिए का वर्णन करने में कठिनाई का अनुभव किया है, यहां तक कि ऐसे व्यक्तियों के चरित्रों का भी, जिनके साथ मेरे घनिष्ठतम संबंध रहे हैं। ऐसी ही बात राजाजी जैसे जटिल चरित्र

के मामले में भी दिखाई देती है। अतः मैं जो कुछ भी उनके विषय में लिखूंगा मुझे डर है कि मैं उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं कर सकूंगा।''

आज़ादी मिलने के बाद के वर्षों में, राजाजी शुरू में तो कांग्रेस के साथ थे, परंतु बाद में वे भूमि सुधार, संविधान में संशोधन, औद्योगिक नीति और ''परमिट लाइसेंस कोटा राज'' जैसे मामलों पर पंडित नेहरू के नेतृत्व में कार्य कर रही कांग्रेस की नीतियों से खफा हो गए थे। उन्होंने महसूस किया कि देश की स्थिति में सुधार लाने के नेहरू के आवेगशील दृष्टिकोण ने उन्हें आलोचना का पात्र बना दिया है। हालांकि किसी ने भी नेहरू की निष्ठा पर संदेह नहीं किया, परंतु अनेक लोगों ने उनकी नीति की सटीकता पर प्रश्न उठाए। फिर भी किसी व्यक्ति में भी उनकी अवमानना करने का साहस नहीं था, चाहे ऐसा उनके पद के प्रति उनकी सम्मान की भावना थी, अथवा इस बात का डर था कि उन पर प्रश्नचिन्ह लगाकर वह अलोकप्रिय हो जाएंगे तथा सत्ता में अपने पदों को गंवा बैठेंगे।

वास्तव में, राजाजी से यह बात पूछी गई थी कि जब कोई भी उनकी बात को सुनने के लिए इच्छुक नहीं है, फिर भी वे नेहरू तथा ''परमिट लाइसेंस कोटा राज'' के विरुद्ध इतना जोरदार अभियान क्यों छेड़ रहे हैं। उन्होंने कहा था, "मैं जानता हूं कि वे लोग मेरी बात नहीं सुनेंगे। परंतु जब भारत का इतिहास लिखा जा रहा है, तो कोई भी भावी इतिहासकार हम पर यह लांछन नहीं लगाएगा कि ऐसे देश में, जहां महान साधु-संत रहा करते थे, एक भी ऐसा नहीं था जिसने भारतीय "परमिट लाइसेंस कोटा राज" की विसंगतियों की ओर अंगुली उठाई।"

नेहरू की नीति के विरुद्ध खुले विद्रोह का परचम लहराने वाले राजाजी पहले व्यक्ति थे। उन्होंने मात्र विद्रोह ही नहीं किया, बल्कि स्वतंत्र पार्टी का गठन करके नहेरू तथा उनकी नीतियों के खिलाफ एक बड़े आंदोलन का नेतृत्व भी किया। लेकिन उन दोनों में पारस्पारिक सम्मान और प्यार कभी भी कम नहीं हुआ।

एक जटिल और विरोधाभासी व्यक्तित्व

राजाजी पर प्रायः अंसगत और बार-बार अपना पक्ष बदलते रहने का आरोप लगता रहा है। हम कुछ ऐसी महत्वपूर्ण परिस्थितियों का अवलोकन कर सकते हैं, जब उनका विरोधाभास स्पष्ट रूप से दिखाई दियाः

- वे एक रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और उन्होंने हिंदू धर्म पर अनेक पुस्तकें लिखी थीं तथा उन्हें कांची परमाचार्य द्वारा संतों में महासंत कहा जाता था। लेकिन उन्होंने ऐसे सामाजिक सुधारों को प्रोत्साहित किया जिन्हें आज भी बर्दाश्त नहीं किया जाता हैः अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह और जातीय समानता।

- जब वे वर्ष 1937 से 1939 तक मद्रास प्रेजीडेंसी के मुख्यमंत्री थे, तब उन्होंने भारी विरोध के बीच हिन्दी को स्कूलों में एक अनिवार्य विषय के रूप में शुरू किया था तथा विरोध का दमन करने के लिए आपराधिक कानूनों का प्रयोग किया था। परंतु वर्ष 1950 मे उन्होंने हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए एक उग्र अभियान शुरू किया और इसके स्थान पर अंग्रेजी की वकालत की।

- वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके नेताओं के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे परंतु उन्होंने वर्ष 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन तथा भारत के विभाजन के मुद्दों पर उनका विरोध किया। उन्हीं लोगों ने उन्हें बाद में अनेक उत्कृष्ट पदों पर नियुक्त किया, जैसे-कार्यकारिणी समिति का सदस्य, मंत्रिमंडल की सदस्यता तथा गवर्नर जनरल का पद।

- उन्होंने वर्ष 1950 में कांग्रेस छोड़ दी तथा यह घोषणा करते हुए एक नई राजनैतिक पार्टी "स्वतंत्र पार्टी" की स्थापना की कि उनका उद्देश्य कांग्रेस तथा नेहरू को हराना है, बावजूद इस तथ्य के कि उनका नेहरू के साथ लंबा जुड़ाव रहा था और वे नहेरू के बड़े प्रशंसक थे।

हालांकि सावधानीपूर्वक सोच-विचार करने के पश्चात उन्होंने अपना विचार अथवा दृष्टिकोण बदल दिया। उन्होंने गांधी और नेहरू जैसे विशिष्ट नेताओं के साथ सहमत न होने में जरा भी हिचक नहीं दिखाई, परंतु इसके साथ ही वे उन्हें समझाए जाने पर अपनी विचारधारा को बदलने के लिए भी तैयार थे।

राजाजी का जीवन और लक्ष्य

राजाजी का जन्म 10 दिसंबर, 1878 को हुआ था और उनका निधन 25 दिसंबर, 1972 को 94 वर्ष की लंबी आयु में हुआ। वे एक अधिवक्ता, राजनयिक, राजनेता, लेखक, दार्शनिक, चिंतक, शिक्षक और सलाहकार थे।

मेरा स्वयं का व्यक्तिगत अनुभव देशप्रेम, अत्यंत बुद्धिमान, सत्यनिष्ठा, दूरदर्शिता और धार्मिक जीवन का पालन जैसी उनकी चारित्रिक विशेषताओं की पुष्टि करता है। वे ऐसे कुछेक विलक्षण लोगों में से थे जिन्होंने उसी बात को व्यावहारिक रूप में अपनाया जिसकी उन्होंने शिक्षा दी और उस बात को मानने से इंकार कर दिया, जो उनकी राय में धर्म-सम्मत नहीं थी। उनका निजी जीवन उनके सार्वजनिक जीवन का आईना था।

मैं मुख्य रूप से एक पेशेवर चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप मे उनके साथ वर्ष 1960 से 1972 तक लगभग 12 वर्ष तक जुड़ा रहा। मैंने उनके लंबित कर आकलन (Pending tax assessment) के कार्य में उनकी मदद की, जिसमें अधिक वित्तीय कार्य शामिल नहीं था, परंतु अधिकांश मामले लोक और शैक्षणिक हित से संबंधित थे। इसके तुरंत बाद उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं ग्रेजुएट्स निर्वाचन क्षेत्र से मद्रास विधान परिषद का चुनाव लड़ूं जो कि मूल रूप से उनकी उस समय से सीट थी जब वे 1957-59 के दौरान प्रेजीडेंसी के मुख्यमंत्री थे। बाद में, उनके कहने पर मद्रास उच्च न्यायालय ने मुझे लक्ष्मणस्वामी राव साहेब की संपदा (एस्टेट) का प्रशासक नियुक्त कर दिया जिन्होंने सरकार द्वारा उनकी आवासीय संपत्ति को जब्त कर लिए जाने के बाद आत्महत्या कर ली थी। उनके साथ मेरे अनेक वर्षों के साहचर्य में गीता की कक्षाओं में एक साथ शामिल होने पर बिताया गया समय तथा अनेक सामाजिक समारोहों पर हुई मुलाकातें शामिल हैं, जिनमें से अधिकांश अवसर मेरे खुद के ही बनाए हुए थे ताकि मैं उनके शैक्षिक एवं मजेदार साथ का लाभ उठा सकूं।

यदि कोई मामला पत्राचार द्वारा निपटाए जाने योग्य होता था तो वे किसी से भी अनावश्यक रूप से मिलना पसंद नहीं करते थे। यहां तक कि जब मैं उनके साथ दस या पंद्रह मिनट भी बिताता था, तो उनके प्रश्न स्पष्ट होते थे और उनके द्वारा अनुपूरक प्रश्न काफी गहन हुआ करते थे। जब भी कभी कोई उनके कमरे में दाखिल होता था, तो वे उसके आने का प्रयोजन भांप जाते थे तथा एक भी मिनट गंवाए बिना सीधे मुद्दे की बात पर आ जाते थे। उनका साथ देने के लिए किसी भी व्यक्ति को उनके द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों और उनके अनुपूरक प्रश्नों को भांपना होता था। उनके कमरे में प्रवेश करने से पहले मैं हमेशा उनके द्वारा पूछे जाने वाले संभावित सवालों का जवाब अपने दिमाग मे तय कर लेता था तथा ऐसे सवालों और उनके जवाबों को अपनी बाईं हथेली में स्याही से लिख लिया करता था। उनके साथ मुलाकात के लिए की जाने वाली तैयारियां

उन सभी मुलाकातों की तुलना में कहीं अधिक एवं व्यापक हुआ करती थी जो मैं अपने पेशे में किसी जटिल समस्या के लिए किया करता था।

राजाजी के लगभग साठ वर्षों के राजनैतिक जीवन में उन्हें सरकार में तथा सरकार के बाहर अत्यंत विविध भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए देखा जा सकता है। वेः (i) आजादी से पहले के दिनों में एक स्वतंत्रता सेनानी थे, (ii) सरकार में रहते हुए एक प्रशासक थे (iii) एक नागरिक के रूप में राजनैतिक एवं आर्थिक मामलों पर एक साधारण सलाहकार तथा टीकाकर थे और (iv) जब उनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया जाता था तो वे एक तीखे आलोचक थे।

राजाजी के जीवन और कॅरियर का संक्षिप्त चित्रणः

1). उन्होंने एक क्रिमिनल लॉयर (आपराधिक मामलों के अधिवक्ता) के रूप में 1900 में सलेम में 22 वर्ष की आयु में अपना कॅरियर आरंभ किया जो कि मद्रास से लगभग 200 मील दक्षिणपश्चिम में एक छोटा-सा कस्बा था। वे अपने इस पेशे में बहुत सफल रहे थे।

2). वे वर्ष 1917 से 1919 तक सलेम नगरपालिका के अध्यक्ष रहे और इस दौरान उन्होंने अनेक सामाजिक सुधारों को अंजाम दिया।

3). उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेने के लिए वर्ष 1919 में अधिवक्ता परिषद (बार) से इस्तीफा दे दिया और दोबारा इसमें शामिल नहीं हुए। उन्हें पहली बार दिसंबर 1921 में जेल जाना पड़ा।

4). वे एक कुशाग्र लेखक थे और उन्होंने वर्ष 1922 में *यंग इंडिया* का संपादन किया और उन्होंने *कल्कि* और *स्वराज्य* सहित अनेक पत्रिकाओं में अनेक विषयों पर नियमित रूप से लेख लिखे। उन्होंने कुछ बहुमूल्य पुस्तकों की रचना भी की, जिसमें *रामायण* और *महाभारत* भी शामिल हैं, जिनका आज अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

5). उन्होंने स्वयं को पूर्ण रूप से सृजनात्मक कार्यक्रम में समर्पित करने के लिए वर्ष 1925 से 1930 तक खुद को सार्वजनिक जीवन से अलग कर लिया।

6). वर्ष 1930 में नमक सत्याग्रह का नेतृत्व करने के लिए उन्हें सार्वजनिक जीवन की मुख्यधारा में वापस बुला लिया गया।

7). वर्ष 1937 से 1939 तक वे मद्रास प्रेजीडेंसी के मुख्यमंत्री रहे जो कि वर्तमान के तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल को मिलाकर एक संयुक्त राज्य था (जिसमें प्रांतीय राज्य शामिल नहीं थे)।

8). कांग्रेस के आह्वान पर उन्होंने 1939 में मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया।

9). उन्होंने "भारत छोड़ो" मुद्दे पर 1942 में त्यागपत्र दे दिया और पृथक पाकिस्तान की स्थापना की वकालत करना शुरू कर दिया।

10). उन्हें 1946 में कांग्रेस में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया और उन्हें कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति में तथा कांग्रेस में 2 सितंबर, 1946 से 1947 तक पंडित नेहरू की अंतरिम सरकार में शामिल किया गया।

11). उन्हें 15 अगस्त, 1947 को पश्चिम बंगाल का राज्यपाल बनाया गया।

12). वे 21 जून, 1947 को स्वतंत्र भारत के पहले गवर्नर जनरल बने और उन्होंने 26 जनवरी 1950 तक यह पद संभाला।

13). वर्ष 1950 के अंत में उन्हें एक मंत्री के रूप में केंद्रीय सरकार में शामिल होने का एक बार फिर आमंत्रण दिया गया।

14). 1952 में उनसे मद्रास राज्य का मुख्यमंत्री बनने का अनुरोध किया गया।

15). उन्होंने 1954 में मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया।

16). उन्होंने 81 वर्ष की आयु में 1959 में स्वतंत्र पार्टी के नाम से एक नई राजनैतिक पार्टी की स्थापना की।

17). उन्होंने 1962 में (विदेश की उनकी पहली यात्रा) संयुक्त राज्य अमेरिका का दौरा किया। जिसके दौरान उन्होंने परमाणु हथियारों पर प्रतिबंध लगाने की वकालत करते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी से मुलाकात की।

18). 25 दिसंबर, 1972 में उनका निधन हो गया।

एक अधिवक्ता के रूप में उनका करियर (1900 से 1919)

राजाजी के वकील बनने के विषय में लिया गया निर्णय संभवतः उनके पिता चक्रवर्ती आयंगर का फैसला था जो यह चाहते थे कि उनका पुत्र एक जज बने क्योंकि उनके जन्म के समय एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि ये एक वायसराय बनेंगे, जो कि उस समय यथार्थवादी नहीं लगता था। परंतु जज बनने की बात असंभव नहीं थी। उन्होंने सलेम में वकालत शुरू कर दी जो कि 7,000 की जनसंख्या वाला एक कस्बा था। बतौर वकील उनका व्यवसाय काफी सफल था और उनके एक समकालीन वकील के अनुसार वे अपने सभी मुकदमे जीत जाते थे। मुवक्किलों को आमतौर पर लगता था कि यदि राजाजी उनका मुकदमा लड़ेंगे तो वे अवश्य ही सफल होंगे।

उनकी फीस बहुत ज्यादा थी और वे 1,000 रु. प्रति मुकदमा वसूल किया करते थे जो कि आज के मूल्य के संदर्भ में लगभग 2.50 लाख रु. के बराबर होगी। वे मान्यता, प्रतिष्ठा और आर्थिक लाभ के मायनों में अपने पेशे में बेहद सफल थे।

फिर भी, उन्होंने 1919 में अपना पेशा छोड़ दिया और फिर कभी भी अधिवक्ता परिषद को न अपनाने का निर्णय लिया। प्रश्न पैदा होता है कि ऐसा क्यों हुआ? आर्थिक दृष्टि से वे बहुत समृद्ध नहीं थे और कानून से जुड़े इस पेशे से मिलने वाला पैसा उन्हें अत्यंत आरामदायक स्थिति में रख सकता था। इसका स्वाभाविक-सा उत्तर यह है कि वे स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होना चाहते थे। यदि एकमात्र यही कारण होता तो वे अन्य लोगों की ही भांति पुनः अपने व्यवसाय में वापस जा सकते थे अथवा जब कभी भी वे जेल में नहीं होते तो अपनी वकालत जारी रख सकते थे। परंतु इस प्रश्न का उत्तर कहीं ओर छिपा है।

वर्ष 1907 के आरंभ में (जब वे 28 वर्ष के थे) उन्होंने पटना के "हिंदुस्तान रिव्यू" के जुलाई अंक में लिखा था, "उन अचल देशप्रेमियों के ध्यान आकर्षित करने के लिए विधि सम्मत आंदोलन के उग्र रूप अपनाए जाने की जरूरत है, जो इस देश की नियति को नियंत्रित कर रहे हैं।"

वर्ष 1913 में, जब वे वकालत कर रहे थे, वे एक जातीय कर (Racial Tax) का शांतिपूर्ण तरीके से विरोध करने के लिए गांधीजी की गिरफ्तारी से बहुत ही उद्वेलित हुए। गांधीजी के आंदोलन के लिए कुछ धन एकत्र करने के अलावा उन्होंने अपने पैसों से गांधीजी के "जेल के अनुभवों" को

पुनः मुद्रित कराया और उन्हें अपनी इस भूमिका के साथ वितरित कराया: "क्या हम लोग अपने घरों में बैठकर ही खुश रहेंगे या क्या हम देश को केवल अपने आंसू ही देंगे। यह पर्चा सभी को केवल गांधीजी की ताकत प्रदर्शित करने के लिए ही नहीं दिया जा रहा है। उन्हें अवतारों के साथ रखना होगा...हमें अपने कुछ ऐशो-आराम को छोड़ कर उनका सहयोग करना चाहिए।"

जब जून 1917 में वे सलेम नगरपालिका परिषद के अध्यक्ष निर्वाचित हुए तो उन्होंने अपनी वकालत की कीमत पर अपना श्रेष्ठतम कार्य किया और वे नगरपालिका कार्य में तथा साथ ही विख्यात राजद्रोह के मामले में डॉ. पी.वर्धराजा नायडू का पक्ष लेने जैसे लोकहित के मामलों में में घंटों बिताया करते थे। (2)

एक बार एक मुवक्किल ने, जो मौत की सजा से बचा था, उन्हें वह चाकू वापस लौटाने की व्यवस्था करने का अनुरोध किया जिससे उसने एक व्यक्ति की हत्या की थी। इस बात पर राजाजी अत्यंत क्रोधित हो गए थे और कहा जाता है कि उन्होंने ऐसा कहा था, "मैं उस वेश्या की मजबूरी समझ सकता हूं और एक बार को तो उसे क्षमा भी कर सकता हूं, जो पैसे के लिए अपना शरीर बेचती है, परंतु ऐसे वकील को क्षमा नहीं कर सकता जो अपनी बुद्धिमता का धंधा करता है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब मैं यह पेशा त्याग दूंगा।" और गांधी के आह्वान ने उन्हें यह मौका दे दिया और 1919 में उन्होंने वकालत से मुंह मोड़ लिया।

स्वाधीनता संग्राम में राजाजी

स्वाधीनता आंदोलन में शामिल होने के लिए कांग्रेस उनके लिए एक दैवीय अवसर सिद्ध हुई। गांधीजी ने महसूस किया कि 17 नवंबर, 1921 को वेल्स के राजकुमार की भारत यात्रा कांग्रेस को अंग्रेजों की अवज्ञा करने का अवसर प्रदान करेगी और उन्होंने उस यात्रा के खिलाफ हड़ताल करने का फैसला लिया। लेकिन ब्रिटिश राज के लिए ऐसी किसी हड़ताल का अर्थ अवज्ञा का कृत्य था और मद्रास सरकार ने सभी बैठकों पर प्रतिषेध लगाए जाने के विषय में आदेश जारी कर दिए। राजाजी को अपनी अवज्ञा की भावना को प्रदर्शित करने का मौका जल्द ही मिल गया और उन्होंने 14 दिसंबर, 1921 को एक बैठक को संबोधित करने का फैसला लिया। सार्वजनिक बैठकों पर प्रतिबंध और प्रतिषेध संबंधी आदेश वेल्स के राजकुमार की यात्रा के बाद भी लंबे समय तक लागू रहे। उन्हें गिरफ्तार किया गया और तीन माह के कारावास की सजा सुनाई गई।

फैसला मिलने पर राजाजी ने गांधीजी को लिखा, "मैं जेल जा रहा हूं और मुझे लगता है कि मैंने अपने जीवन के उद्देश्य को महसूस कर लिया है।" जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने समूचे देश की यात्रा की और विभिन्न भारतीय नेताओं के साथ बातचीत की। और इस प्रकार, उन्होंने स्वयं को सक्रिय रूप से राष्ट्रीय स्तर पर स्वाधीनता आंदोलन में शामिल कर लिया।

राजाजी मानते थे कि आजादी के लिए संघर्ष के मायने आवश्यक रूप से यह नहीं है कि हम स्वयं को सार्वजनिक बैठकों को संबोधित करने, राजनैतिक विषयों पर लोगों की चेतना को जागृत करने, सत्याग्रह आयोजित करने और शासकों के साथ बातचीत करने के कार्य तक ही सीमित कर लें। उन्होंने महसूस किया कि समाज स्वयं ही तेजी के साथ विभिन्न धार्मिक और जातिवादी समूहों में विभाजित होता जा रहा है, जिसके नतीजतन स्वयं हिंदुओं के बीच (ब्राह्मण एवं गैर ब्राह्मण जाति के हिंदुओं और हरिजनों के मध्य) और साथ ही हिंदुओं और मुसलमानों के बीच विवाद बढ़ते ही जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी व्याप्त है। ताड़ी और कच्ची शराब समाज के गरीब तबकों की निम्न आय का एक बड़ा हिस्सा हड़प रही है। उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेसियों को अपना ध्यान गांधीजी के निर्माण कार्यक्रम में समर्पित करना चाहिए. अतः उन्होंने गांधीजी द्वारा गुजरात में स्थापित किए गए "साबरमती आश्रम" की ही तर्ज पर सलेम के निकट तिरुचेनकोडे गांव में 6 फरवरी, 1925 को "गांधी आश्रम" की स्थापना की। उसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थेः

- भूमिहीन श्रमिकों और समाज के पिछड़े वर्गों के लिए खादी और अन्य ग्रामोद्योगों के माध्यम से पूर्ण रोजगार के अवसरों का प्रावधान।
- हरिजनों और अन्य दलित वर्गों का सामाजिक उद्धार।
- सामाजिक बुराई अर्थात शराब पर पूर्ण प्रतिबंध अथवा इसका उन्मूलन।

यह आश्रम आज तक सामाजिक कार्यों के माध्यम से अत्यंत उत्कृष्ट कार्य कर रहा है। अनेक प्रतिष्ठित नेताओं ने इस स्थान का दौरा किया है। जैसे महात्मा गाधी, सरदार पटेल, पंडित जवाहर लाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सत्यमूर्ति और कामराज। राजाजी के पोते केशवन आश्रम में अनेकों बार आते-जाते रहते हैं।

यह उन्हीं दिनों की बात है, जब प्रांतीय सभा के चुनाव सिर पर थे। राजाजी ने सोचा कि कांग्रेसी विधानमंडल में प्रवेश कर सकते हैं और मद्य-निषेध के लिए कार्य कर सकते हैं। लेकिन अनेक कांग्रेसियों के लिए "स्वराज" अथवा स्वशासन ही एकमात्र केंद्रीय मुद्दा था और शेष समस्त मुद्दे गौण थे। उस समय के एक प्रख्यात कांग्रेसी नेता सत्यमूर्ति के शब्दों में, वे शराब न पीने वाले लोगों के देश के स्थान पर मदिरा पीने वाले स्वतंत्र देश को तरजीह देते थे। राजाजी महसूस करते थे कि सृजनात्मक कार्यक्रम भी उतने ही जरूरी हैं और विधायकों को विधानमंडलों में प्रवेश करके इन कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

राजाजी ने महसूस किया कि हरिजनों और प्रतिषेध के मुद्दों को उठाकर वे दलित शोषितों तथा गैर ब्राह्मण समुदाय की सहायता कर रहे हैं लेकिन इसके विपरीत ई.वी. रामास्वामी नायकर और वर्दाराजुलु नायडू जैसे स्वयंभू गैर-ब्राह्मण नेताओं का मानना था कि राजाजी वास्तव में गैर ब्राह्मण समुदाय की कीमत पर ब्राह्मणों के हितों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। साम्प्रदायिक भेदभावों का ठीकरा राजाजी के सिर पर फोड़ दिया गया। अतः उन्होंने सक्रिय राजनीति से हटने का फैसला लिया और स्वयं को अनन्य रूप से गांधीजी के सृजनात्म कार्यक्रम के प्रोत्साहन के प्रति समर्पित कर दिया। वस्तुतः गांधीजी ने भी उनके इस विचार का समर्थन किया था और उन्हें लिखा था, "आपका केंद्रीय कार्य स्थापित किए गए आश्रम का विकास करना है और अन्य सभी कार्य गौण हैं।" अतः उन्होंने 1925 में खुद को खादी के प्रोत्साहन, मद्य-निषेध, अस्पृश्यता उन्मूलन आदि जैसे कार्यों के विकास के प्रति समर्पित कर दिया।

वर्ष 1929 में, अंग्रेजों ने भारत को स्वतंत्र उप-निवेश का दर्जा प्रदान करने की एक अप्रत्यक्ष प्रतिबद्धता संप्रेषित की परंतु तुरंत बाद वे अपने आश्वासन से मुकर गए। निराश और आहत होकर गांधीजी और कांग्रेस ने इस मुद्दे पर अपना रोष और असंतोष व्यक्त किया। अतः वर्ष 1929 में हुए कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस यह फैसला लेने को विवश हो गई कि उसका उद्देशय पूर्ण स्वराज की मांग करना है और भारत के लोग 26 जनवरी, 1930 को यह शपथ लें कि एक विदेशी शासन की सत्ता के अधीन रहना मानव और सरकार के विरुद्ध एक अपराध है। उस शपथ का स्मरणोत्सव मनाने के लिए 26 जनवरी को "गणतंत्र दिवस" के रूप में मनाया जाता है।

गांधीजी ने राजाजी को उनके "राजनैतिक संन्यास" से वापस बुलाया और *हरिजन* में लिखाः

> मैं अपने पाठकों को यह रहस्य बताना चाहता हूं कि कांग्रेस की सत्य एवं अहिंसा की स्वीकृति को अपने जीवन के नियम के रूप में सम्मान करने वाले लोगों में से कोई भी व्यक्ति मेरे साथ उतनी दृढ़ता के साथ नहीं लड़ा जितना कि सी.राजगोपालाचारी लड़े हैं। परंतु उनके भीतर एक सैनिक की अनिवार्य श्रद्धा विद्यमान है। मैं सत्याग्रह का अपना स्वयं का जनरल और अपना पहला सैनिक 1906 में बना था। जब 1919 में मैंने अपनी जनरलशिप की घोषणा की थी, राजाजी उन लोगों में से एक थे जिन्होंने इसकी प्रारंभिक अवस्था में ही अपना नाम सूची में दर्ज करा लिया था। उनके ही नेतृत्व में 6 अप्रैल की हड़ताल की प्रेरणा मुझ तक पहुंची। उस दिन से लेकर आज तक जनरल के प्रति उनकी सत्यनिष्ठा भर्त्सना और तुला से परे है।
>
> मुझे उनकी बुद्धिमत्ता, उनकी स्पष्टवादिता और कम से कम कांग्रेसी जनों के मध्य एक सांसद के रूप में उनकी अतुलनीय क्षमता में अटूट विश्वास है। हमारे पास सत्याग्रह में उनके समान और कोई सेनानी नहीं है।

तिरुचेनकोडे से लौटने पर राजाजी ने समूचे देश में अभियान चलाया और लोगों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह छेड़ने के लिए आग्रह किया। गांधीजी ने नमक कानून तोड़कर (बिना लाइसेंस के नमक बनाना एक अपराध था) नागरिक अवज्ञा आंदोलन के रूप में इस विद्रोह को एक नई दिशा दी क्योंकि इस कार्य में बहुत से लोगों के शामिल होने की संभावना थी। कानून की इस अवज्ञा को "सत्याग्रह" का नाम दिया गया और यह इस सिद्धांत पर आधारित थी, "यदि आप किसी सरकार को तोड़ने का निर्णय लेते हैं, तो पहले उसके कानून का उल्लंघन करो।" इसके अनुसार, गांधीजी ने नमक कानून को तोड़ने के लिए उनके साबरमती आश्रम से 240 मील दूर स्थित पश्चिमी तट के दांडी नामक गांव का चुनाव किया और राजाजी ने इस कार्य के लिए तंजावूर जिले में वेदाराण्यम नामक स्थान का चयन किया। इस अवज्ञा के लिए राजाजी को छह माह के कारावास की सजा सुनाई गई।

उनकी इस सजा के समय के ही दौरान, राजाजी के एक घनिष्ठ मित्र और कांग्रेस के एक सहयोगी टी.एस.एस. राजन ने त्रिची में स्थानीय चुनाव में कांग्रेस के अधिकारिक प्रत्याशी को हराने में बहुत बड़ा योगदान दिया। राजाजी ने राजन की इस अनुशासनहीनता की नैतिक

जिम्मेदारी ले ली और कांग्रेस के समस्त पदों अर्थात कार्यकारिणी समिति, संसदीय बोर्ड और तमिलनाडु कांग्रेस समिति से इस्तीफा दे दिया। यहां तक कि वे अपनी प्राथमिक सदस्यता से भी त्यागपत्र देना चाहते थे, परंतु सरदार पटेल ने उन्हें यह गंभीर कदम न उठाने के लिए राजी कर लिया।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंर्तगत वर्ष 1936 की समाप्ति पर प्रांतीय चुनाव होने तय थे और कांग्रेस इन चुनावों में भाग लेने के लिए पूरी तरह से तैयार थी। कांग्रेस समितियों से इस्तीफा दे देने के कारण राजाजी विधानसभा के चुनावों में भी भाग नहीं ले सकते थे। यदि कांग्रेस को वहां बहुमत मिलता, तो पार्टी के नेता का चुनाव करने का मुद्दा अत्यंत विषम समस्या खड़ी कर देता। विचार करने के लिए दो उम्मीदवार ध्यान में थे, तमिलनाडु से एस.सत्यमूर्ति और आंध्र से टी.प्रकाशम। इन दोनों में से कोई भी दूसरे नेता का नेतृत्व स्वीकार नहीं करता। राजाजी ही एकमात्र ऐसे नेता थे, जिनका नाम सभी को स्वीकार्य था। परंतु राजाजी चुनाव लड़ने के इच्छुक नहीं थे। लेकिन सरदार पटेल ने उन्हें सफलतापूर्वक इस कार्य के लिए मना लिया और सक्रिय सार्वजनिक जीवन में राजाजी की वापसी का व्यापक रूप से स्वागत किया गया।

राजाजी ने अपना नामांकन मद्रास ग्रेजुएट्स निर्वाचन क्षेत्र से भरा और उनका चुनाव प्रचार मात्र एक प्रेस वक्तव्य के प्रकाशन तक ही सीमित था, जिसमें उन्होंने अपने मतदाताओं से एक प्रयोग अर्थात "गरीब आदमी का निर्वाचन" करने का अनुरोध किया या और उनसे क्षमा मांगी थी कि वे सभी को इसके लिए अलग-अलग पत्र नहीं भेज रहे हैं, जिसके किए जाने पर 1,000 रु, का खर्च होता। राजाजी को कुल 5,968 वोटों में से 5,326 वोट मिले और कांग्रेस को कुल 185 सीटों में से 159 सीटें हासिल करके बड़ी आसानी से बहुमत हासिल हो गया।

हालांकि कांग्रेस अध्यक्ष पंडित नेहरू का मानना था कि कांग्रेस को पदभार ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि निर्वाचित सरकार की शक्तियां सीमित थीं और वे ब्रिटिश गवर्नर द्वारा वीटो के अध्यधीन भी थीं जो कि नेहरू के अनुसार राष्ट्रीय गौरव के अपमान की बात थी, लेकिन गांधीजी महसूस करते थे कि कांग्रेस उस स्थिति में कार्यभार स्वीकार कर सकती है यदि ब्रिटिश उन्हें यह आश्वासन दे कि वीटो शक्ति का प्रयोग मंत्रियों के परामर्श के खिलाफ नहीं किया जाएगा। स्वाभाविक रूप से ऐसा स्पष्ट आश्वासन संभव नहीं था और यह भारत सरकार अधिनियम, 1935

के अनुरूप नहीं था। परंतु राजाजी का सदैव ही यह मानना था कि राज-काज में आए समर्पित एवं सक्षम लोग गरीब वर्गों के उत्थान के लिए काफी कुछ कर सकते हैं चूंकि वे व्यवहार कुशल और अत्यंत सक्षम मध्यस्थ थे, अतः वे वायसराय से यह आश्वासन प्राप्त करने में सफल हो गए, "इस सुझाव के लिए कोई भी आधार नहीं है कि उत्तरदायित्वों की सीमित परिधि के बाहर प्रांत के दैनिक प्रशासन के भीतर हस्तक्षेप करने के लिए गवर्नर स्वतंत्र अथवा पात्र है अथवा उसके पास ऐसा करने की शक्ति है।" इस अप्रत्यक्ष आश्वासन ने गांधीजी को संतुष्ट कर दिया। यह निर्णय लिया गया कि सभी आठ राज्यों में मंत्रालय गठित किए जाएं।

मद्रास प्रेजीडेंसी की प्रीमियरशिप (प्रधानमंत्रित्व)

राजाजी को भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत वर्ष 1937 में तत्कालीन मद्रास प्रेजीडेंसी का प्रीमियर (प्रधानमंत्री) चुना गया। उनकी प्रीमियरशिप एक अत्यंत कठिन और संवेदनशील जिम्मेदारी थी जिसमें अत्यंत व्यवहारकुशलता, सक्षमता और दृढ़ता की जरूरत थी। मद्रास प्रेजीडेंसी के प्रीमियर की उनकी भूमिका के सूक्ष्म अध्ययन से उनकी कुशाग्र बुद्धि, कड़ी मेहनत, गरीबों की सेवा के प्रति उनकी ईमानदारी आदि का स्पष्ट रूप से प्रदर्शन होता है। बेहतर प्रशासन की कला में यह एक महान सबक सिद्ध होगा। विशेष रूप से सार्वजनिक अथवा राजनैतिक जीवन में कार्यरत आज के ऐसे व्यक्तियों के लिए जो एक बेहतर प्रशासक बनना चाहते हैं।

22 फरवरी, 1949 को सरदार पटेल द्वारा दिए गए भाषण के निम्नलिखित उद्धरण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि लोग उनके प्रीमियरशिप पद के संचालन के विषय में क्या सोचा करते थे:

> श्री सी. राजगोपालाचारी हमारे देश के एक जाने-माने नेता हैं और एक महान तथा बुद्धिमान देश-प्रेमी हैं। यह हमारा सौभग्य रहा है कि संकट के समय में हमारे पास एक ऐसा व्यक्ति मौजूद है, जिस पर हम परामर्श एवं सलाह के लिए भरोसा कर सकते हैं। उन्हीं ने मद्रास से (1937-39 में) भारत के संसदीय जीवन की आधारशिला रखी है। ऐसे भी दिन कभी थे, जब प्रशासन के कार्य को कार्यकुशलता के साथ निर्वहन करने में हमारे लोंगों की क्षमता पर संदेह व्यक्त किया जाता था, जब हमारे कार्य पर नजर रखने के लिए और लोग मौजूद रहते

थे, और न केवल नजर रखने के लिए बल्कि आवश्यकता पड़ने पर हमें नीचा दिखाने के लिए।

सरदार पटेल के उपरोक्त पाठ का महत्व समझने के लिए, किसी भी व्यक्ति को उन सीमाओं के बारे में कुछ अधिक जानना होगा जिनके अंतर्गत राजाजी एक प्रीमियर के रूप में कार्य कर रहे थे। कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित नेहरू कार्यभार ग्रहण करने के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे और यदि किसी भी समय यह महसूस करते कि ऐसा करने से कांग्रेस अथवा राष्ट्र की गरिमा के साथ समझौता किया जा रहा है, तो मंत्रालय को इस्तीफा देना पड़ता। इस संबंध में कोई भी औपचारिक आश्वासन नहीं दिया गया था कि गवर्नर की वीटो शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा और इस प्रकार उनके अधिकार का उपयोग करने के लिए उन्हें कोई भी अवसर नहीं दिया जाना चाहिए था।

अनेक सुपरिभाषित भारतीय बुद्धिजीवी ईमानदारी से यह महसूस करते हैं कि कांग्रेसी केवल आंदोलन करने वाले और पदों को प्राप्त करने वाले ही लोग थे तथा बेहतर प्रशासकों के रूप में उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। राजनैतिक दलों सहित ऐसे अनेक लोग थे जो अंग्रेजों और अंग्रेजी संस्कृति के प्रति वफादारी रखते थे और यह कामना करते थे कि राजाजी का कार्यकाल असफल हो जाए। इस प्रकार, मंत्रालय कुछ लोगों के लिए "नजर रखने की चीज" था, तो कुछ अन्य लोगों के लिए "हिट लिस्ट" में था।

सिविल सेवक जिनमें से अधिकांश अंग्रेज थे, जिन्हें राजाजी को नियंत्रित करना पड़ता था और जिनके साथ सहयोग स्थापित करना होता था, उनके स्वामी हुआ करते थे। परंतु अब वे उनके सेवक बन गए थे। अतः राजाजी को उनके साथ मृदुता, व्यवहार कुशलता और साथ ही साथ उचित रूप से व्यवहार करना होता था। सिविल सेवा के सदस्य अत्यंत बुद्धिमान थे और वे मंत्रियों की तुलना में कहीं योग्य भी थे और उन्हें यह बात भली-भांति मालूम भी थी। अनेक मंत्री, हालाकि वे पक्के देश-भक्त थे, परंतु प्रशासन की कला में अनुभवहीन थे।

वास्तव में, मुझे अब भी याद है कि अंग्रेजी के एक प्रोफेसर डॉ. करमचंद वाडे, जो राजकीय कॉलेज, कुम्बकोणम में प्रधानाचार्य रहे और बाद में वे प्रेजीडेंसी कॉलेज (चेन्नई) में भी प्राचार्य रहे, ने एक सार्वजनिक बैठक में खुलेआम यह टिप्पणी की थी, "मद्रास के एक निपट मूर्ख के पास उप-प्रांत में अन्य अनेक छोटे मूर्ख हैं और उन सभी ने मिलकर एक मूर्ख मंत्रालय का

गठन कर लिया है।" भले ही यह टिप्पणी कितनी भी असहनीय और तीखी क्यों न हो, यह उस अवसर की पूर्व संध्या पर उच्चस्तरीय भारतीयों की आम संवेदनाएं थीं, जब राजाजी ने प्रीमियरशिप का कार्यभार संभाला था।

राजाजी ने इन सभी समस्याओं का समाधान किया। दो वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति पर उनके राजनैतिक विरोधियों, जैसे टी.टी, कृष्णामचारी ने भी उनकी सराहना की थी और इस बात को स्वीकार किया कि राजाजी के मंत्रालय ने शासन करने की दृढ़ता और सामर्थ्य प्रदर्शित किया और यह कि उनका प्रशासन एक आदर्श प्रांतीय सरकार थी। यहां तक कि अंग्रेजों और अंग्रेज भारतीयों ने, जिन्होंने राजाजी की क्षमता पर संदेह किया था, बाद मे उनकी योग्यता को लोहा माना। नेहरू ने भी, जिन्होंने शुरू में मंत्रालयों का गठन करने का विरोध किया था, बाद में यह स्वीकार किया कि मद्रास सरकार ने किसी अन्य प्रांतीय सरकार की तुलना में अधिक कार्य किया।

कुल मिलाकर राजाजी की प्रशासनिक क्षमता, व्यवहार कुशलता और ज्ञान की सामान्यतया प्रशंसा की गई जैसाकि लॉर्ड एर्स्किन (तत्कालीन गवर्नर) द्वारा किंग जॉर्ज को लिखे गए 29 दिसंबर, 1937 के पत्र में देखा जा सकता हैः

> अब मैं स्वयं प्रीमियर की ही बात करूं, मैं उनके साथ काफी तालमेल के साथ काम कर रहा हूं लेकिन वह एक विचित्र संयोजन है...वह एक आदर्शवादी हैं और ऐसा लगता है कि उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य भारत को उसी जगह ले जाना है जैसा वह सम्राट अशोक के दिनों में था। सभी कार्यों में उनकी भूमिका अहम रहती है और यदि उन्हें कोई कार्य करना होता है, तब हमें उनके साथ रहना होता है।

राजाजी की उन विशिष्ट विशेषताओं का विश्लेषण करना जरूरी है जिन्होंने उन्हें एक सफल प्रशासक बना दिया, उदाहरण के लिए (i) उनकी अत्यंत बुद्धिमानी और समस्याओं को पहले ही भांप लेने की योग्यता, (ii) उनकी समस्याओं को यथासंभव टालने की योग्यता और यदि टाला न जा सके तो बिना किसी डर या पक्षपात के तेजी के साथ उनका एक उचित एवं दृढ़ता से समाधान ढूंढना, (iii) उनका मानना तथा जल्द ही यह बात पहचान लेना कि सिविल सेवक प्रशासन की रीढ़ है और उनके बिना कोई भी मंत्रालय प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकता

है, उनके मनोबल को सदैव बनाए रखा जाना चाहिए, तथा इसके साथ ही उन्हें निर्वाचित मंत्रालय पर कब्जा स्थापित करने की अनुमति भी नहीं दी जानी चाहिए, (iv) उनकी वैयक्तिक सत्यनिष्ठा और दैनिक प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करने से इनकार कर देना, और (v) गरीबों की सेवा करने की उनकी गहन इच्छा।

अब हम कुछ घटनाओं पर नजर डालते हैं कि वे मामलों का निपटान किस तरह करते थेः

(1) यहां तक कि अपने अधिकारियों, जिनमें से अधिकांश अंग्रेज थे, के साथ हुई अपनी पहली ही बैठक में उन्हें "स्थायी सार्वजनिक सेवा में मेरे सहयोगियों" के रूप में संबोधित किया था और उनसे अनुरोध किया था कि वे "पूर्व में किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध किए गए अथवा पूर्व में किसी के साथ हुए अत्याचार और पक्षपात को समाप्त कर दें। मैं सोचता हूं कि समस्त सेवा, जिसमें पुलिस भी शामिल है, मुझे अपने मित्र के रूप में देखें।"

(2) एक अंग्रेज अवर सचिव जे.बी.एल. मुनरो राजाजी के एक अनुभवहीन मंत्री द्वारा आईसीएस अधिकारियों पर की गई तीखी टिप्पणियों से काफी नाराज थे। उन्होंने संबंधित मंत्रियों से अनुरोध किया कि वे इस संबंध में आपसी सामंजस्य का दृष्टिकोण अपनाएं, जिससे अधिकारी संतुष्ट हो जाएं, उन्होंने अधिकारी को परामर्श भी दिया कि वे कभी-कभार घटने वाली इन घटनाओं को आपसी बातचीत से निपटा लिया करें।

(3) उन्होंने तत्कालीन पुलिस महानिरीक्षक सर चार्ल्स कनिंघम को अपने कमरे में बुलाया। सर कनिंघम ने एक बढ़िया सूट पहनकर उनके कमरे में प्रवेश किया। राजाजी ने टिप्पणी की, "मैं सर चार्ल्स कनिंघम से मिलना नहीं चाहता हूं बल्कि पुलिस महानिरीक्षक से मुलाकात करना चाहता हूं।" उन्हें उनकी बात का तात्पर्य समझ आ गया और वे वापस चले गए तथा पुनः पुलिस की वर्दी पहनकर उनसे मिलने गए।

(4) उन्होंने सिविल सेवा के प्रति अपना प्रेम दिखाने या अपना पक्षपात रहित रवैया दर्शाने और साथ ही खादी के प्रोत्साहन के प्रति अपने हृदय में भरे महत्व को दर्शाने के लिए सिविल सेवा के प्रतिनिधि मुख्य सचिव चार्ल्स ब्रैकनबरी को खादी का एक सूट भेंट किया।

(5) उन्होंने प्रेजीडेंसी मजिस्ट्रेट के रूप में एक यूरोपीय, जो कि सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति था, को नियुक्त करने में कोई झिझक नहीं दिखाई और उन्होंने जाति अथवा नस्ल के आधार पर अधिकारी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया।

(6) एक अपराधी का पीछा करते हुए मद्रास का एक पुलिस सब-इंस्पेक्टर पड़ोसी मैसूर राज्य (जो कि उस समय प्रांतीय राज्य था) में घुस गया और उसने अचानक ही उस अपराधी पर गोली चला दी जिससे उसकी मौत हो गई। मैसूर राज्य की पुलिस ने उसे हिरासत में ले लिया। राजाजी ने उस समय के अत्यंत प्रतिष्ठित एवं "महंगे" वकील वी.एल. इथिराज से निवेदन किया कि वे स्वयं जाकर मैसूर उच्च न्यायालय में जमानत की अर्जी पर बहस करें। उन्होंने मजाक में यह भी कहा कि मद्रास सरकार के पास उसकी फीस का भुगतान करने के लिए "पर्याप्त वित्तीय संसाधन" हैं। इथिराज ने स्वयं जाकर जमानत की अर्जी पर जिरह की और सब-इंस्पेक्टर को जमानत पर छुड़वा कर ले आए। (यह सिविल सेवा के लिए एक संकेत था कि मुख्यमंत्री कानून के दायरे में रहकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करने में सदैव उनके साथ हैं।)

(7) जनरल नील, जिसने 1857 के विद्रोह का दमन किया था और जिसे अंग्रेज अपना नायक मानते थे तथा भारतीय जिसे "निष्ठुर" मानते थे, की एक मूर्ति मद्रास के बीचों बीच माउंट रोड पर लगाई गई थी। भारतीयों द्वारा लंबे समय से इसे हटाने की मांग की जा रही थी और अंग्रेज उस मांग को स्वीकार नहीं कर रहे थे। राजाजी ने उसे चुपचाप रात में हटवा दिया और उसे सरकारी संग्रहालय में सुरक्षित रख दिया ताकि ब्रिटिशों की संवेदनाओं को ठेस न पहुंचे।

(8) नियमों के अनुसार, ब्रिटिश गवर्नर ही मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करते थे। कांग्रेसी और विशेष रूप से बंबई के प्रीमियर बी.जी. खेर इसे अपनी गरिमा का अपमान मानते थे कि किसी बैठक में वे अधीनस्थ अधिकारी बनकर बैठें तथा उस बैठक की अध्यक्षता ब्रिटिश गवर्नर द्वारा की जाए। राजाजी ने सुझाव दिया कि पांच से दस मिनट तक चलने वाली एक औपचारिक बैठक ब्रिटिश गवर्नर की अध्यक्षता में की जा सकती है, तथा मंत्रिमंडल की वास्तविक बैठक, जिसमें नियमित कार्य निष्पादित किए जाएं, उस औपचारिक बैठक से पहले या उसके बाद आयोजित की जाएगी। इस सुझाव को सामान्यतः स्वीकार कर लिया गया और सभी कांग्रेस प्रीमियरों द्वारा इसका अनुपालन किया गया। इस प्रकार इस मुद्दे पर अनावश्यक विवाद को उठाने की अनुमति नहीं दी गई।

(9) राजाजी सदैव ही यह महूसस किया करते थे कि सरकारी कर्मचारी राजनैतिक गठबंधनों से स्वतंत्र होने चाहिए और उन्होंने स्थानीय प्राधिकरणों के कर्मचारियों को भी कांग्रेस सहित किसी भी राजनैतिक पार्टी में शामिल होने से रोका। नेहरू इस बात से अप्रसन्न हुए और उन्होंने इस बात पर आपत्ति जताई परंतु राजाजी ने उनकी बात मानने से इनकार कर दिया।

(10) एक अन्य घटना में, विशाखापत्तनम के जिला मजिस्ट्रेट क्रोम्बी द्वारा मजदूरों की हड़ताल के सिलिसिले में चिराला (आंध्र प्रदेश) में गोली चलाने के आदेश दिए जाने से संपूर्ण मद्रास राज्य के मजदूरों के बीच रोष व्याप्त हो गया। राजाजी ने क्रोम्बी के खिलाफ कार्रवाई के सुझाव को सिरे से खारिज कर दिया। इसके स्थान पर उन्होंने एक अंग्रेज जज हॉरविल को इस घटना की जांच के लिए नियुक्त कर दिया और उसने क्रोम्बी को निर्दोष करार दिया। जांच के आदेश ने जनता को संतुष्ट कर दिया और अंग्रेज जज की नियुक्ति ने क्रोम्बी तथा अन्य अधिकारियों में जांच की निष्पक्षता को लेकर आत्मविश्वास भर दिया। सभी लोग संतुष्ट थे। जब उसकी रिपोर्ट पर आंध्र में लोगों ने आपत्ति जताई तो भी राजाजी अपनी बात पर कायम थे कि रिपोर्ट को स्वीकार किया जा चुका है क्योंकि यह अलोकप्रिय होने के बावजूद सही है, और उन्होंने यह भी तर्क दिया कि लोगों द्वारा कहने पर प्रशासनिक निर्णयों को बदला नहीं जा सकता है। उनके लिए किसी निर्णय की लोकप्रियता की तुलना में उसकी सटीकता कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी।

(11) उस समय के सचिवों में से अधिकांश की, जो कि आइसीएस अधिकारी थे, यह आदत थी कि वे सामान्यतः तीन बजे के आसपास कार्यालयों से चले जाते थे, और उसके बाद वे सामाजिक कार्यकलापों जैसे क्लब जाना आदि में मशगूल हो जाते थे। राजाजी ने उसी समय अपने कक्ष से बाहर निकलने की आदत बना ली थी। एक दिन उन्होंने तीन बजे जाने वाले एक अधिकारी को कहा, "आप आइसीएस अधिकारी अत्यंत कार्यकुशल और सक्षम होते हैं और अपना काम दोपहर तीन बजे तक समाप्त कर लेते हैं। परंतु मैं उतना सक्षम नहीं हूं। मुझे रात आठ बजे तक बैठना पड़ता है।" इससे उन अधिकारियों के दोपहर तीन बजे जाने की आदत पर विराम लग गया। किसी पर दोषारोपण भी नहीं किया गया और उद्देश्य को प्राप्त भी कर लिया गया।

(12) अंग्रेजों द्वारा मदुरै में मैसर्स हारेवज़ मिल्स में तालाबंदी का फैसला लिया गया और लगभग 20,000 मजदूरों की नौकरियां इस से चली गईं। प्रबंधन का आशय था कि वे मजदूर संघ के परेशान करने वाले कर्मचारियों की छंटनी कर दें और केवल निष्ठावान तथा नए कर्मचारियों की

ही भर्ती करे। राजाजी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत एक आदेश जारी किया कि मिल को तब तक नहीं खोला जाए, जब तक कि इस संबंध में कोई समझौता न हो जाए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 राज्य सरकार को ऐसा आदेश जारी करने के लिए प्राधिकृत करती है कि वह किसी भी व्यक्ति को "सार्वजनिक शांति को बनाए रखने अथवा किसी भी प्रकार की अशांति के निवारण के लिए" कोई कार्यवाही करने अथवा उसे कोई भी कार्यवाही से रोकने के लिए आदेश जारी कर सकती है। यह असाधारण परिस्थितियों में प्रयोग की जाने वाली असाधारण शक्ति थी। गवर्नर प्रस्तावित कदम का अनुमोदन करने के लिए तैयार नहीं थे। राजाजी अपने निर्णय पर कायम थे और उन्होंने धमकाया कि यदि उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जाएगा तो वे इस्तीफा दे देंगे। गवर्नर को कार्रवाई करनी पड़ी और पहली बार धारा 144 उस समय तक अधिरोपित की गई जब तक कोई संतोषजनक समझौता नहीं कर लिया गया।

वर्ष 1952-54 तक उनके मुख्यमंत्री के रूप में दूसरे कार्यकाल के दौरान ही उनका यही हठीपन स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। सलेम के दिनों के उनके एक घनिष्ट पारिवारिक मित्र वी.पी. रमण जो कि कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक थे (जिसे सामान्यतः प्रांतीय कार्यों और सोवियत रूस के जासूसों की पार्टी माना जाता था), उन्होंने पासपोर्ट के लिए आवेदन किया। राजाजी ने उनके पासपोर्ट के आवेदन को अस्वीकार कर दिया और वी.पी. रमण का निजी प्रभाव भी उन्हें किसी प्रकार से प्रभावित नहीं कर सका।

ऐसे दृष्टांतों की भरमार हो सकती है लेकिन ऐसे कोई उदाहरण पेश नहीं किए जा सकते जहां उन्होंने अपनी ताकत का उपयोग खुद के लिए, अपने परिवार या दोस्तों के लिए किया हो। यही कारण है कि उनके धुर राजनैतिक विरोधियों ने किसी भी समय उनकी सत्यनिष्ठा के खिलाफ कभी भी उंगली नहीं उठाई।

मुख्यमंत्री के रूप में उनके दो वर्ष के दूसरे कार्यकाल के दौरान महत्वपूर्ण उपलब्धियों का वर्णन नीचे किया गया हैः

(1) पहली बार, उन्होंने हरिजनों के मंदिर में प्रवेश को प्राधिकृत किया। एक कट्टर कांग्रेसी और राजाजी के घनिष्ट मित्र विद्यानाथ अय्यर ने मदुरै मंदिर में उनके प्रवेश की अगुवाई की और तमिलनाडु के अन्य मंदिरों में भी इसी तरह से उनका प्रवेश हुआ।

(2) उन्होंने "ऋण राहत विधेयक" प्रस्तुत किया जिसके तहत, यदि किसान ने कर्ज ली गई अपनी वास्तविक राशि से दो गुना अधिक का भुगतान कर दिया है तो समस्त ऋण चुकता समझा जाएगा।

(3) उन्होंने कुछ जिलों में चुनिंदा रूप से मद्य निषेध लागू किया और जब यह पाया गया कि उससे बहुत से गरीब लोगों को लाभ मिला है तो इसे बाद में अन्य क्षेत्रों तक विस्तारित किया गया। मद्य निषेध पर हुए राजस्व के नुक्सान की प्रतिपूर्ति के लिए उन्होंने विक्रय कर लागू किया, जो कि आज सभी राज्य सरकारों के लिए राजस्व का प्रमुख स्रोत है। यह उदाहरण राजाजी ने शुरू किया था।

(4) यदि किसी "आरक्षित पद" के लिए कोई उपयुक्त हरिजन उम्मीदवार नहीं मिल पाता था, तो वे उस विज्ञापन को पुनः उस समय तक दोहराने के आदेश देते थे जब तक कि कोई उपयुक्त हरिजन उम्मीदवार न मिल जाए। इस प्रकार अनेक ऐसे हरिजन उच्च राजपत्रित पदों तक भी पहुंच जाते थे, जिन्हें मूल रूप में निम्न पदों पर नियुक्त किया गया था।

ऐसा नहीं है कि इन सुधारों को बिना किसी कठिनाई के लागू कर दिया गया। वी.वी.एस. शास्त्री, टी.टी. कृष्णामाचारी, पनीरसेल्वम जैसे वयोवृद्ध लोगों ने अनेक आपत्तियां उठाईं। जैसे धार्मिक संवेदनाओं को ठेस पहुंचाना, कृषकों के ऋणों को माफ करने के संबंध में अनैतिकता आदि। लेकिन उन्होंने ठोस तर्कों के माध्यम से सभी को आश्वस्त कर दिया।

राजाजी इस बात को पूरी तरह मानते थे कि स्वतंत्र भारत में हिंदी एक अत्यंत महत्वपूर्ण भारतीय भाषा बनेगी। वे नहीं चाहते थे कि उस समय दक्षिण इस मामले में पीछे रहे और उन्होंने एक प्रयोग के आधार पर 125 स्कूलों में कक्षा छठी से आठवीं तक एक अनिवार्य विषय के रूप में हिंदी को शुरू किया। उससे अनेक युवा छात्र लाभान्वित हुए। जिसमें मैं भी एक था। लेकिन उनके विरोधियों के लिए, विशेष रूप से द्रविड़ कषगम और इसके ई.वी. रामास्वामी नायकर जैसे नेताओं के लिए यह बात राजाजी के लिए परेशानियां खड़ी करने के उद्देश्य से एक दैवीय वरदान साबित हुई। तमिल अंध राष्ट्रभक्तों और गैर-ब्राह्मणों को संवेदनशील अपीलें जारी की गईं, जिनके नतीजतन हिंसा और उपद्रव का माहौल व्याप्त हो गया। लगभग एक हजार लोगों को छह माह से एक वर्ष तक की अवधि के लिए कारावास की सजा सुनाई गई। बाद में, द्रविड़ मुनेत्र कषगम को सरकार ने "थियागी" के तौर पर मान्यता दी।

राजाजी को आंदोलनकारियों का दमन करने के लिए दमनकारी उपाय करने पड़े। यहां तक कि सत्यमूर्ति सरीखे कांग्रेसी नेताओं और डॉ. एस. राधाकृष्णन जैसे शिक्षाविदों ने राजाजी से अनुरोध किया कि हिंदी को एक वैकल्पिक विषय बनाया जाए, लेकिन राजाजी ने महसूस किया कि *सत्याग्रह* का दुरुपयोग किया जा रहा है और वे ऐसे दुरुपयोग को माफ करने के पक्ष में नहीं थे।

राजाजी भी धीरे-धीरे मुख्यमंत्री के रूप में अपने अधिकार को सुनिश्चित करने का प्रयास कर रहे थे और उनके अनुसार महत्वपूर्ण मामलों में उनसे भी परामर्श किया जाना चाहिए और ब्रिटिश राज अपने आरक्षित अधिकारों के प्रति अधिक सकारात्मक एवं जागरूक बनना चाहिए। राजाजी और ब्रिटिश राज के बीच स्थापित मधुर संबंध अब समाप्ति की ओर अग्रसर होते प्रतीत होते थे।

ब्रिटेन ने, 3 सितंबर, 1939 को जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और इसके परिणामस्वरूप वायसराय ने स्वतः ही भारत को युद्धरत राज्य घोषित कर दिया जिसके लिए किसी भी निर्वाचित सरकार से परामर्श नहीं किया गया।

राजाजी ने 30 अक्तूबर को अपना इस्तीफा सौंप दिया और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 93 लागू कर दी गई और सलाहकारों की सहायता से गवर्नर का शासन अस्तित्व में आ गया।

जिन्ना ने कांग्रेस मंत्रालयों के इस्तीफे को *रिहाई दिवस* (Deliverance Day) के रूप में मनाया। आठ राज्यों में कांग्रेस शासन की सफलता ने भी ब्रिटिश लोगों के मध्य एक धारणा का सृजन किया कि कांग्रेस ही उनकी सबसे मजबूत शत्रु है।

कांग्रेस और गांधीजी के साथ मतभेद

वर्ष 1939 से 1942 तक की अवधि स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सर्वाधिक भ्रम की अवधि थी। ब्रिटिश कूटनीति बहुत ही आसानी के साथ कांग्रेसी नेताओं की अपरिपक्वता पर हावी हो गई थी। उन्होंने कांग्रेस को इस हद तक हैरान-परेशान कर दिया था कि प्रांतीय मंत्रियों को इस्तीफे देने पड़ गए थे। इस्तीफे देने के बाद भी, कांग्रेस में उदारवादी प्रकृति के नेता नाजीवाद के विरुद्ध ब्रिटेन द्वारा किए जा रहे प्रयासों को समर्थन देना चाहते थे और वे ब्रिटेन से यह वादा चाहते थे कि वे युद्ध के बाद भारत को आजादी दे देंगे। कांग्रेस में ऐसे युवा भी थे जो ब्रिटिश सरकार को हैरान-परेशान करने के बारे में काफी रुचि रखते थे। ब्रिटिश सरकार का कांग्रेस के प्रति रवैया

पूर्णतः उदासीन था और वे ऐसा कोई आश्वासन नहीं देना चाहती थी। पहली बार उन्होंने अपना यह रुख सामने रखा कि कांग्रेस भारतीय जनता में केवल एक ही वर्ग (अर्थात हिंदुओं का) का प्रतिनिधित्व करती है और देश में अन्य लोग भी ऐसे हैं, विशेष रूप से मुसलमान और रजवाड़े, जिन पर विचार किया जाना अभी बाकी है।

वायसराय द्वारा किंग को लिखे गए पत्र के निम्नलिखित उद्धरण हिंदुओं और मुसलमानों को विभाजित करने की उनकी नीति के विषय में संकेत देते हैं-

> जैसे ही मैंने महसूस किया कि युद्ध के प्रयासों में कांग्रेस के सहयोग की कीमत के रूप में मुझ पर अत्यधिक और निरंतर दबाव डाला जा रहा है कि हम उन्हें प्रमुख राजनैतिक छूट प्रदान करने पर विवश हो जाएंगे, मैंने भारत में समस्त अधिक महत्वपूर्ण हितों एवं समुदायों के प्रतिनिधियों को बुलाया जिनमें चैंबर ऑफ प्रिंसेस और श्रीमान जिन्ना भी शामिल थे और उनसे एक-एक करके साक्षात्कार किया...यह एक अत्यधिक बड़ा और बोझिल कार्य था लेकिन परेशानी से कहीं अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ। घोषणा में कांग्रेस को वह नहीं दिया गया जिसकी वह मांग कर रही थी...तब मैजेस्टी सरकार द्वारा यह वादा किया गया कि युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता प्रदान कर दी जाएगी।
>
> *घोषणा में यह तथ्य स्पष्ट रूप से इंगित कर दिया गया कि हम कांग्रेस के, उस पार्टी द्वारा समस्त भारत की ओर से दावे को वैधता प्रदान नहीं कर सकते हैं (लेखक ने इस पर जोर दिया।)*

इस बीच, मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद अली जिन्ना ने खुलेआम यह घोषणा कर दी कि (i) हिंदू और मुसलमान पूरी तरह से अलग हैं, (ii) वे आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं और साथ खाना भी नहीं खा सकते हैं, (iii) उनके रीति-रिवाज, साहित्य, ग्रंथ और नायक अलग-अलग हैं, (iv) प्रायः एक का नायक दूसरे का शत्रु है, और (V) वे दो विभिन्न राष्ट्रों का निर्माण करते हैं।

मुस्लिम लीग ने 1940 में लाहौर में हुए अपने वार्षिक सम्मेलन में यह संकल्प भी लिया कि प्रभुतासंपन्न मुस्लिम प्रधान क्षेत्र, पाकिस्तान, का सृजन ही एकमात्र वह विकल्प है जो मुसलमानों को स्वीकार्य है। यह प्रश्न हमेशा से ही विवाद का विषय रहा है और आगे भी बना रहेगा कि क्या इस संवेदना को उनके मन में ब्रिटिश सरकार द्वारा हवा दी गई थी या नहीं। लेकिन ऊपर दर्शाए गए वायसराय द्वारा किंग जॉर्ज को लिखे गए पत्र में इस बात का संकेत मिलता है कि ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच खाई खोदने का प्रयास पूरी तरह सफल रहा था। भारत में मुसलमानों की विशाल संख्या ने, यहां तक कि दूर दक्षिण में रहने वाले मुसलमानों ने भी पाकिस्तान के लिए जिन्ना के आह्वान का समर्थन किया। ब्रिटिश सरकार ने इसके साथ ही यह अप्रत्यक्ष रूप से संकेत दे दिया था कि भारत की रियासतें भी स्वतंत्रता के बारे में किसी भी बातचीत के अभिन्न हिस्से के रूप में गिने जाएंगे।

गांधीजी सहित कांग्रेस के पास अंग्रेजों को हैरान-परेशान किए बगैर उनके युद्ध के प्रयासों के विरुद्ध अपनी सीमित असहमति व्यक्त करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचा था। अतः गांधीजी ने फैसला लिया कि वे एक सांकेतिक विरोध, अर्थात युद्ध के प्रयासों के साथ असहयोग करेंगे, और कुछ चुनिंदा लोग गैर-कानूनी नारे लगाएंगेः "लोगों अथवा पैसों के साथ अंग्रेजों के युद्ध के प्रयासों की सहायता करना गलत है।" और वे लोग अपनी गिरफ्तारियां देंगे। वैयक्तिक सत्याग्रह जैसा कि इसे उस समय नाम दिया गया था लाचार देशभक्त भारतीयों द्वारा सांकेतिक विरोध की एक अभिव्यक्ति थी।

इस निर्णय के अनुसरण में, राजाजी ने लगभग आधा दर्जन लोंगों को निम्नलिखित बातें लिखीं:

> ब्रिटिश सरकार ने अपने विधानमंडल से पूछे बगैर भारत को युद्ध का हिस्सा बनने का आदेश दिया है। जबकि ब्रिटेन के राष्ट्रमंडल के अन्य हिस्सों को तटस्थ बने रहने के विकल्प का प्रयोग करने की अनुमति दी गई है...विधानसभा द्वारा अस्वीकृत किए गए करों को वायसराय के आदेश द्वारा अधिरोपित किया जा रहा है...
>
> अतः लोगों या पैसों की सहायता के साथ ब्रिटेन के युद्ध के प्रयासों की सहायता करना गलत है। इस पत्र की एक प्रति प्राधिकारियों को प्रेषित की जा रही है ताकि वे, यदि वे आवश्यक समझें, तो मेरे खिलाफ कार्यवाही कर सकें।

राजाजी को 3 अक्तूबर, 1941 को गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में 6 अक्तूबर, 1941 को रिहा कर दिया गया। गांधीजी राजाजी की रिहाई का इंतजार कर थे ताकि उनसे परामर्श कर सकें। अक्तूबर की समाप्ति पर गांधीजी और राजाजी की वर्धा में मुलाकात हुई और उन्होंने विस्तृत विचार-विमर्श किया। राजाजी ने अपनी जेल की अवधि के दौरान राजनैतिक हालात पर काफी गहन चिंतन-मनन कर रखा था।

जबकि मुस्लिम लीग और अन्य पार्टियों जैसे कम्युनिस्टों और जस्टिस पार्टी ने युद्ध में ब्रिटेन के प्रयासों को पहले ही आंशिक समर्थन प्रदान कर दिया था, कांग्रेसजनों के बीच पहले ही इस बात को लेकर विचारों में मतभेद पैदा हो गए थे कि क्या युद्ध के प्रयासों का विरोध किया जाए, और यदि हां तो किस हद तक।

राजाजी ने महसूस किया कि कांग्रेस के लिए श्रेष्ठ विकल्प ब्रिटिश सरकार के साथ बातचीत करना और स्वतंत्रता के बारे में किसी भी प्रकार का आश्वासन हासिल करना है। गांधीजी को यह विचार स्वीकार्य नहीं था। लखनऊ विश्वविद्यालय में दिए गए दीक्षांत भाषण में राजाजी पहली बार खुलकर गांधीजी के विरोध में आगे आए (*दि हिंदू*, 14 दिसंबर, 1941):

> मैंने इन 22 वर्षों तक गांधीजी के साथ कार्य किया है और उनके सिद्धांतों और पद्धतियों को विकसित तथा कार्यान्वित करने में उनकी सहायता करने में सिर्फ गर्व का अनुभव किया है। ऐसे अनेक बंधन हैं, जो मुझे उनके साथ जोड़ते हैं। उनके साथ मतभेद को पाना और इसे इस रूप में मान्यता देना कि अब हमारे रास्ते अलग हो गए हैं, कोई सुखद बात नहीं है...
>
> हम अपने दृष्टिकोणों को दृढ़ता के साथ अहिंसा की राह की ओर बनाए रखेंगे परंतु हम समान भावना या वास्तविकता की हद तक सिद्धांतों का विरोध करके उस सिद्धांत को समाप्त करने की गलती नहीं कर सकते हैं। भारत की रक्षा एक ऐसा मामला है, जिसे एक अपवाद के रूप में लिया जाना चाहिए।

उन्होंने यह भी महसूस किया कि जापान द्वारा भारत पर हमला किए जाने की स्थिति में ब्रिटेन भारत की रक्षा करने में समर्थ नहीं होगा और वे चाहते थे कि भारतीय लोग स्वयं को युद्ध के लिए तैयार करें। यही वह समय था जब रूज़वेल्ट और चियांग कायशक के दबाव में आकर

ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मेंबर सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत में नियुक्त किया था ताकि वह भारतीयों को युद्ध के प्रयासों में शामिल होने के लिए राजी कर सकें और इसके लिए उनके पास एक प्रस्ताव था कि युद्ध की समाप्ति के बाद, (i) भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा मिल जाएगा, (ii) सरकार के संघीय स्वरूप पर निर्णय लेने के लिए संविधान सभाएं तैयार की जाएंगी, (iii) संघ में शामिल न होने के इच्छुक प्रांतों को सीधे ब्रिटिश सरकार के साथ करार करने की छूट दी जाएगी, और (iV) इसी दौरान, रक्षा को छोड़कर समस्त मंत्रालय भारतीयों को सौंपे जाएंगे, बशर्ते कि वायसराय के पास वीटो शक्ति विद्यमान रहेगी। राजाजी के अनुसार, ये प्रस्ताव बातचीत का आधार बन सकते थे और इन्हें संशोधनों के साथ स्वीकार किया जा सकता था। परंतु गांधीजी ने इन प्रस्तावों को सिरे से नकार दिया।

राजाजी इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि पाकिस्तान की मांग को स्वीकार किए बिना स्वतंत्रता हासिल नहीं की जा सकती है और जापानी हमले का सामना करने के लिए तत्काल एक राष्ट्रीय सरकार का गठन किया जाना चाहिए।

उन्होंने मद्रास कांग्रेस विधानमंडल पार्टी से यह संकल्प पारित करवा लिया कि (i) पाकिस्तान की मांग को स्वीकार किया जाए, (ii) मुस्लिम लीग के समर्थन के साथ मद्रास में एक लोकप्रिय सरकार का गठन किया जा सकता है, और (iii) दक्षिण भारत को किसी भी जापानी हमले का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

इन अप्रत्याशित गतिविधियों से कांग्रेसी नेता पूरी तरह से नाराज थे और राजाजी को इसका दोषी माना गया तथा उनसे अनुरोध किया गया कि वे कांग्रेस और उसकी सभी समितियों से त्यागपत्र दे दें। तदनुसार उन्होंने कांग्रेस से अपने संबंध तोड़ लिए और एक राष्ट्रीय सरकार के लिए और पाकिस्तान के लिए मामले को जनता तक ले गए। कांग्रेस और राजाजी के बीच विभेदों की पूर्णता हो चुकी थी। राजाजी के अनेक सहयोगियों ने उनका साथ छोड़ दिया। उन्होंने कांग्रेसी नेताओं, सहयोगियों और बड़ी संख्या में जनता का समर्थन खो दिया, जिससे वे बुरी तरह अकेले पड़ गए।

इन घटनाओं से विचलित होकर गांधीजी इस विचार के साथ सामने आए कि कांग्रेस को अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए कहना चाहिए। राजाजी के लिए ऐसा साधारण समाधान वास्तविकता से

परे था और उन्होंने "भारत छोड़ो आंदोलन" का विरोध किया। उनका घेराव किया गया और उन पर चप्पलें फेंकी गईं। लेकिन उस समय तक वे इन बातों के आदी हो चुके थे.

"नागरिक अवज्ञा आंदोलन" आरंभ करने और अंग्रेजों को "भारत छोड़ो" कहने के कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के निर्णय के अनसुरण में, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक 8 अगस्त, 1942 को हुई और जब यह अधिवेशन चल ही रहा था, कांग्रेस के सभी नेताओं को हिरासत में ले लिया गया। उसके बाद समस्त भारत में अत्यंत अशांति फैल गई। भारत के कुछ हिस्सों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। इन गिरफ्तारियों की निंदा करते हुए बाजारों, कारखानों, गांवों और कॉलेजों से हिंसक प्रदर्शनकारी बाहर निकल आए। दंगों को समाप्त करने के लिए अंधाधुंध गोलबारी की गई। अनेक लोग मारे गए और उससे कहीं अधिक को जेलों में ठूंस दिया गया। अनेक नेता भूमिगत हो गए। अगस्त की समाप्ति तक सरकार की निर्दयी सेना ने आंदोलन को तोड़कर रख दिया।

किसी समझौते के लिए ब्रिटिश सरकार से भेंट करने के राजाजी के प्रयासों को ठुकरा दिया गया। वास्तव में, उन्हें जेल में गांधीजी से मिलने तक नहीं दिया गया। बाद में, राजाजी को गांधीजी के रिश्तेदार के रूप में उनसे मिलने की अनुमति मिल गई और जेल में हुई उनकी चर्चा के दौरान राजाजी पाकिस्तान की अनिवार्यता के विषय में गांधीजी को आश्वस्त करने और कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के नेताओं वाली प्रांतीय सरकार का गठन करने के लिए राजी करने में सफल हो गए।

विभाजन और गवर्नर जनरल का पद

युद्ध के पश्चात ब्रिटेन में हुए चुनावों में लेबर पार्टी सत्ता में आई और क्लीमेंट एटली उसके प्रधानमंत्री बने। लेबर सरकार ने भारत के लिए आजादी की प्रक्रिया में तेजी लाने का फैसला लिया, जो कि भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने का ब्रिटिश सरकार का पहला ईमानदारी भरा प्रयास था।

तीन कैबिनेट मंत्रियों से बना एक कैबिनेट मिशन 24 मार्च, 1946 को भारत आया और उसने कांग्रेस, मुस्लिम लीग और राजकुमारों के साथ विस्तृत विचार-विमर्श किया। यह सहमति बन गई कि भारत का विभाजन किया जाना चाहिए और उसे स्वतंत्रता दे दी जानी चाहिए, तथा जब

तक वास्तविक रूप में स्वतंत्रता हासिल नहीं हो जाती मुस्लिम लीग और कांग्रेस के नेताओं से मिलकर बनी एक सरकार का गठन किया जाना चाहिए।

लॉर्ड माउंटबेटन को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया और विभाजन की शर्तों पर सहमति बनाई गई। मुसलमानों की जनसंख्या-बहुल क्षेत्र पाकिस्तान कहलाया और उसे भारत के बाहर कर दिया गया। रजवाड़ों को यह स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई कि वे या तो भारत के साथ रहें अथवा पाकिस्तान के साथ या फिर वे स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दें। राजाजी ने जिन्ना को इस बात के लिए राजी करा लिया कि पंजाब और बंगाल को आगे फिर मुसलमान और हिंदू बहुत क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप, पूर्वी पंजाब और पश्चिम बंगाल भारत में आ गए, जिसका श्रेय राजाजी के प्रयासों को दिया जाता है।

अंतरिम सरकार ने, जिसे पूर्व में वायसराय कार्यकारिणी परिषद कहा गया था, जिसमें राजाजी भी शामिल थे, पंडित नेहरू के प्रधानमंत्रित्व के अंतर्गत कार्यभार ग्रहण किया। हालांकि 14 और 15 अगस्त, 1947 लाखों लोगों के लिए खुशियां लेकर आए, लेकिन इस प्रक्रिया में लाखों लोग मारे गए, लाखों लोग उजड़ गए, जिसका कारण बंगाल और पंजाब, दोनों स्थानों पर हुए साम्प्रदायिक दंगे थे।

ऐसा लगता है कि राजाजी का जन्म संकट की स्थिति को सुधारने के लिए ही हुआ था। गांधीजी, नेहरू और पटेल ने सर्वसम्मति से महसूस किया और बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री पी.सी.घोष ने भी इस बात पर जोर दिया कि केवल राजाजी ही साम्प्रदायिक रूप से संवेदनशील बंगाल राज्य में किसी भी अप्रत्याशित आकस्मिक घटना को टालने में सक्षम हैं। राजाजी ने राज्य के गवर्नर बनने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, लेकिन बंगाल के लोगों के बीच उनका स्वागत नहीं किया गया। पूर्व में उन्होंने सी.आर. दास का विरोध किया था और बाद में वर्ष 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में सुभाषचंद्र बोस का विरोध किया था। सुभाषचंद्र बोस के भाई शरतचंद्र बोस, जिन्होंने कांग्रेस छोड़ दी थी, राजाजी विरोधी भावनाओं को हवा दे रहे थे, लेकिन राजाजी को इससे कोई फर्क नहीं पड़ा।

15 अगस्त, 1947 को भारतीय राष्ट्रीय ध्वज प्रधान रूप से हिंदु बहुल जिले खुलना में फहराया गया और 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान का राष्ट्रीय ध्वज मुर्शीदाबाद और मालदा जिलों में फहराया गया जो कि प्रधानतः मुस्लिम बहुल क्षेत्र थे। सिरिल रेडक्लिफ, जिन्हें सीमाओं का

निर्धारण करने का कार्य सौंपा गया था, ने स्थिति को आरक्षित कर दिया। पूरा क्षेत्र मानो विस्फोट के लिए तैयार था और कोई भी छोटी-सी घटना ऐसे भयावह तांडव को जन्म दे सकती थी, जिसके विषय में पहले कभी सुना न गया हो।

राजाजी के इस सुझाव ने अप्रत्याशित घटनाओं को टाल दिया कि पूर्व और पश्चिमी बंगाल, पाकिस्तान और भारत के मुख्यमंत्रियों द्वारा एक संयुक्त वक्तव्य हस्ताक्षरित किया जाना चाहिए, जिसमें लोगों से शांति बनाए रखने की अपील की जानी चाहिए और यह कहा गया हो कि निर्णय में किसी भी प्रकार का बदलाव केवल दोनों देशों के बीच आपसी समझौते के अनुसार ही लागू किया जाएगा।

चूंकि राजाजी को साम्प्रदायिक दंगों को नियंत्रित करने के लिए विशेष रूप से भेजा गया था, उन्होंने सेना और पुलिस के साथ नियमित रूप से संपर्क बनाए रखा। उन्होंने स्वयं प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया और पुलिसकर्मियों, जवानों तथा अधिकारियों को संबोधित किया। उन्होंने सभी समुदायों अर्थात हिंदुओं, मुसलमानों और सिख नेताओं द्वारा यह साझा वचन देने की व्यवस्था भी की कि वे लोग शांति बनाए रखेंगे। उन्होंने मुसलमानों के मध्य आत्मविश्वास भरने का प्रयास भी किया। उन्होंने अपनी भूमिका का निर्वाह अपने पद की अपेक्षाओं से भी कहीं बढ़कर किया।

अब ऐसा लगने लगा था कि राजाजी के जन्म के समय ज्योतिषी द्वारा की गई भविष्यवाणी सच होने लगी है कि यह बालक वायसराय बनेगा। जब लॉर्ड माउंटबेटन को एक अल्पावधि के लिए लंदन जाना पड़ा तो राजाजी ने 10 नवंबर, 1947 से 24 नवंबर 1947 तक भारत के कार्यवाहक गवर्नर जनरल का पदभार संभाला।

अंततः गवर्नर के रूप में उनके दस माह के कार्यकाल की समाप्ति पर राजाजी बंगाल के लोगों का प्रेम जीतने में सफल रहे। *आनंद बाजार पत्रिका* के अनुसार, "साम्प्रदायिक शांति की स्थापना करने में राजाजी की पहल को यहां पर लोग लंबे समय तक याद रखेंगे।" मुसलमानों द्वारा चलाए जा रहे ''मॉर्निंग न्यूज़'' के अनुसार, ''राजाजी की दिल से की गई प्रभावी अपीलों ने अंततः उन लोगों की संवेदनाओं को झकझोर दिया जो अधोपतन की राह पकड़कर कुछ सुनने को तैयार नहीं थे।''

गवर्नर जनरल के रूप मे राजाजी - एक भविष्यवाणी जो सच हुई

22 जून, 1948 के आसपास लॉर्ड माउंटबेटन को गवर्नर जनरल का पदभार त्यागना था और उनका उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाना था। पंडित नेहरू द्वारा राजाजी को किए गए पहले अनुरोध, ''उन्हें गवर्नर जनरल का पद स्वीकार करना चाहिए'' का राजाजी द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया गया। परंतु उनके दूसरे पत्र ''हमें अनेक प्रकार से आपकी सहायता चाहिए'' और सरदार पटेल के पत्र ''आप हमारे लिए काफी सहायक हो सकते हैं और बापूजी की मृत्यु के पश्चात यह अत्यंत अनिवार्य हो जाता है कि हम बचे हुए लोग उनके कार्यों को मिलकर आगे बढ़ाएं और हम सभी की सलाह सभी के लिए उपलब्ध रहे'' ने संभवतः उन्हें गांधीजी के प्रति अपने कर्तव्य की याद दिला दी और उन्होंने भी यह महसूस किया कि उनके दोनों सहयोगियों को वास्तव में उनकी जरूरत है। उन्हें 21 जून, 1948 को गवर्नर जनरल पद की शपथ दिलाई गई।

गवर्नर जनरल के रूप में उन्हें राजनयिक संबंधों को स्थापित करने और राजनयिक मिशनों का आदान-प्रदान करने वाली अनेक विदेशी सरकारों की ओर से प्रत्यय पत्रों के प्रस्तुतिकरण प्राप्त करने का आनंद और सुख प्राप्त होता था, और उन्हें उन राजनयिकों की मेजबानी भी करनी होती थी। राजाजी को इन कार्यों में महारथ हासिल थी। अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों के अलावा उनकी नेहरू और पटेल दोनों ही के साथ घनिष्ठ संबंधों और निकटता के परिणामस्वरूप वे उनके बीच मतभेदों को समाप्त करने में सफल रहे।

रियासतों के एकीकरण में राजाजी की भूमिका

स्वतंत्रता के समय किए गए करार के अनुसार रियासतें या तो भारत में शामिल हो सकती थीं, या पाकिस्तान के साथ या खुद को स्वतंत्र घोषित कर सकते थे। कश्मीर और हैदराबाद को छोड़कर सभी राज्यों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने के लिए राजी कर लिया गया।

सभी रियासतों में से सबसे बड़ी हैदराबाद में अधिकतर हिंदू लोग थे। इसके अलावा, यह भारत के काफी भीतरी भाग में भी था। अतः तर्कसंगत रूप से इसे भारत में शामिल होना चाहिए था। परंतु रज़ाक्कर्स नामक मुस्लिम कट्टरपंथियों के प्रभाव में हैदराबाद के मुस्लिम निज़ाम ने हैदराबाद को स्वतंत्र राज्य घोषित करने का प्रयास किया। इस समस्या का शांतिपूर्वक ढंग से समाधान निकालने के राजाजी के प्रयास सफल नहीं हुए। समस्या का हल निकालने के लिए

अपने दृष्टिकोणों में पटेल और नेहरू के बीच मतभेद था और उसके बाद जो कुछ भी हुआ उसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन राज्य मंत्रालय में सचिव रहे वी.पी. मेनन की इस टिप्पणी से बेहतर हो ही नहीं सकतीः

> सरकार और पड़ोसी प्रांत अधिक चिंतित थे...वे रज़क्कर्स की और उन शरणार्थियों की गतिविधियों के प्रति अधिक ध्यान लगाए हुए थे जो राज्य को छोड़ रहे थे...राज्य मंत्रालय ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया कि हमें हैदराबाद पर कब्जा कर लेना चाहिए और वहां पर व्याप्त अस्त-व्यस्तता को रोक देना चाहिए।
>
> प्रधानमंत्री का जोरदार विरोध किया गया और वे राज्य मंत्रालय के दृष्टिकोण की अत्यधिक आलोचना कर रहे थे। सरदार ने बैठक को बीच में ही छोड़ दिया। उस दिन दोपहर में, गवर्नर नजरल सी.राजगोपालाचारी ने अपने कक्ष में प्रधानमंत्री, सरदार पटेल और स्वयं की एक बैठक निश्चित की। तब उसमें यह निर्णय लिया गया कि ''हमें हैदराबाद पर कब्जा कर लेना चाहिए.''

अगली ही सुबह भारतीय टुकड़ियों ने हैदराबाद पर कब्जा कर लिया और हैदराबाद भारत का एक भाग बन गया। हैदराबाद को एक और ''कश्मीर'' न बनने देने के पीछे व्यापक रूप से राष्ट्र को राजाजी की राजनयिकता और बुद्धिमानी भरे परामर्श का ऋणी होना चाहिए।

एक बार गवर्नर जनरल के रूप में मद्रास के दौरे पर अनेल लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उन्हें राजभवन में आमंत्रित किया जिनमें मंत्री और उनके पुराने मित्र भी शामिल थे। उन लोगों में उनके पुराने मित्र एम.पी, शिवागनानम भी थे जिन्हें सभी प्यार से मा पो सी कहा करते थे और उन्होंने बाहर निकलकर उन्हें अपने गले से लगा लिया। मा पो सी ने अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें याद दिलाया कि वे गवर्नर जनरल हैं और अन्य गणमान्य व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस पर राजाजी ने जवाब दिया कि इंतजार कर रहे गणमान्य व्यक्ति गवर्नर जनरल का स्वागत करने के लिए वहां पर एकत्रित हुए हैं परंतु मा पो सी केवल राजाजी के लिए ही वहां आए हैं।

भारतीय गणतंत्र के जन्म पर

संविधान सभा ने 26 जनवरी, 1950 को भारत को एक गणतंत्र घोषित करने और उसका एक राष्ट्रपति निर्वाचित करने का निर्णय लिया। राजेंद्र प्रसाद और राजाजी के बीच चयन किया जाना था। हालांकि नेहरू राजाजी को वरीयता देते थे, परंतु ऐसा प्रतीत हुआ कि संविधान सभा के अधिकांश सदस्य राजाजी के पक्ष मे नहीं थे क्योंकि उन्होंने ''भारत छोड़ो'' आंदोलन में सहयोग नहीं किया था। वैसे भी, यह साफ हो गया था कि राजेंद्र प्रसाद भी राजाजी के पक्ष में पद त्यागने के लिए इच्छुक नहीं हैं और कोई भी चुनाव नहीं चाहता था। अतः राजेंद्र प्रसाद को 26 जनवरी, 1950 को भारत गणराज्य का राष्ट्रपति घोषित किया गया और राजेंद्र प्रसाद ने राष्ट्रपति का पद संभाल लिया। राजाजी उसी शाम मद्रास के लिए निकल गए।

बिना विभाग (पोर्टफोलियो) के मंत्री

गवर्नर जनरल के पद से सेवानिवृत्त होने के पश्चात ऐसा प्रतीत हुआ कि राजाजी सदा के लिए मद्रास आ गए हैं और वे अब कोई नया पद ग्रहण नहीं करेंगे। राजाजी के दिल्ली छोड़ने के पश्चात नेहरू और पटेल के बीच अक्सर विचारों में मतभेद पैदा होते रहते थे। उन्हें दिल्ली छोड़े अभी छह माह भी नहीं हुए थे कि उन्हें 15 जुलाई, 1950 को बिना विभाग के मंत्री के रूप में पद की शपथ दिलाई गई। उन्होंने कठिनाइयों को झेलने वाले संकटमोचन के रूप में अपना कार्य करना जारी रखा। मंत्रिमंडल की आर्थिक कार्य समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. सी.डी. देशमुख, जो एक उत्कृष्ट एवं प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री थे, को बैठक का संचालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। विदेश समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता को मान्यता देने के विषय में अपना विरोध व्यक्त किया, जैसा कि नेहरू को लिखे उनके पत्र (1 दिसंबर, 1950) से देखा जा सकता हैः ''ईश्वर हमें चीन का एक उपग्रह बनने से बचाने में हमारी मदद करे! मुझे उस समय बहुत दुख होता है जब पानिक्कर (बीजिंग में भारत के राजदूत) अत्यंत संतुष्टि के साथ हमें बताते हैं कि चीन के हमारे साथ बहुत ही मैत्रीपूर्ण संबंध हैं और उसे सीमा क्षेत्र पर कब्जा करने की कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। अब हमें किसी भी संरक्षक की जरूरत नहीं है।''

ऐसा विदेश समिति की एक बैठक के दौरान स्पष्टतः प्रतीत हुआ जब नेहरूजी ने उनसे कहा, ''देखिए, राजाजी बहुमत मेरे साथ है।'' राजाजी मुस्कराए और उन्होंने कहा, ''जी हां, जवाहरलालजी, बहुमत आपके साथ है, लेकिन तर्क मेरे साथ है।''

नेहरू अपनी इच्छा के विरुद्ध कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन के निर्वाचन से काफी नाराज हो गए थे और उन्होंने इस्तीफे की धमकी भी दी। राजाजी ने एक सार्वजनिक वक्तव्य में उनसे कहा कि देश को सरदार पटेल और पंडित नेहरू दोनों को ही सतत मार्गदर्शन की जरूरत है और यह भी कहा, ''हमसे कुछ लोगों को, जिन्होंने कुल मिलाकर अपने जीवन के 35 साल इसमें लगा दिए हैं, अपने सक्रिय जीवन की समाप्ति पर ऐसा अवश्य ही करना चाहिए।'' इस प्रकार, उन्होंने एक विस्फोटक स्थिति को शांत कर दिया और उनके द्वारा ऐसी ही अनेक स्थितियां इसी प्रकार संभाल ली गईं।

एक मोहभंग का शिकार गृह मंत्री

दिसंबर 1950 में सरदार पटेल के निधन पर राजाजी गृहमंत्री बनने का स्पष्ट विकल्प थे। गृहमंत्री के रूप में उन्होंने तेलंगाना और पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्टों के आंदोलन का निपटान दृढ़ता के साथ किया तथा विवादास्पद प्रेस विधेयक को तैयार किया। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने महसूस किया कि उन्हें नेहरू और पटेल के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निपटान करने के लिए ही दिल्ली बुलाया गया था और पटेल के निधन के पश्चात अब उनकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका शेष नहीं रह गई है। वे और नेहरू वर्षों तक एक-दूसरे के सहयोगी रहे थे लेकिन उन्होंने सोचा कि अब नेहरू को अनुयायियों की आवश्यकता है, सहयोगियों की नहीं।

नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष टंडन के लिए बहुत-सी कठिनाइयां पैदा कर दी थीं जिसके फलस्वरूप उन्हें इस्तीफा देने के लिए विवश होना पड़ा था। हालांकि नेहरू ने सदैव ही यह दृष्टिकोण बनाए रखा कि किसी एक व्यक्ति को एक साथ प्रधानमंत्री का पद और कांग्रेस अध्यक्ष का पद नहीं संभालना चाहिए। लेकिन उन्होंने टंडन के इस्तीफे के पश्चात कांग्रेस के अध्यक्ष का पद संभाल लिया और साथ ही अपना प्रधानमंत्री का पद भी जारी रखा।

ऐसी ही अनेक घटनाओं से राजाजी ने यह समझ लिया कि सरदार पटेल की मृत्यु के पश्चात नेहरू को ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, जो उनके आदेशों को मान सकें और उन्हें अपनी बराबरी

करने वाले लोग नहीं चाहिए। परंतु उन्होंने खुले तौर पर अपनी असहमति कभी भी व्यक्त नहीं की सिवाय लॉर्ड माउंटबेटन को लिखे अपने एक पत्र में, जिसके उद्धरण नीचे दिए गए हैं, जो यह चाहते हैं कि राजाजी लंदन में उच्चायुक्त बनें:

> आप और एडविना, नेहरू में इतनी गहन रुचि लेते हैं कि मुझे ऐसा लगता है कि आपके पास किसी अन्य व्यक्ति को देखने के लिए आंखें और किसी अन्य के बारे में सोचने के लिए मस्तिष्क ही नहीं है। राजाजी सिगरेट को जलाने के लिए माचिस की एक तीली मात्र है...आप उस माचिस की तीली को उसका काम पूरा हो जाने के पश्चात बिना किसी सोच-विचार के एशट्रे में फेंक देंगे।
>
> मैं इतना थक गया हूं और आराम के लिए तड़प रहा हूं, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।
>
> एक अस्पष्ट कैबिनेट मंत्री, बिना शक्ति के गवर्नर, जब संविधान को घायल करने का समय था तो उस समय गवर्नर जनरल, बिना विभाग के मंत्री, गृह मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री के रूप में मेरा कॅरियर बहुत ही उल्लेखनीय रहा है। अब यूनाइटेड किंगडम में कार्यवाहक उच्चायुक्त की संभावना जताई जा रही है। अंततः एक दिन मैं अत्यंत खुशी के साथ कहीं किसी विभाग में वरिष्ट लिपिक (सीनियर क्लर्क) का पद स्वीकार कर लूंगा और उस पद का निर्वहन भी उसकी पूरी गरिमा के साथ करूंगा।

दिल्ली छोड़ते समय, अपने बिदाई भाषण में राजाजी ने कहा था, ''मेरा दिमाग नहीं, बल्कि मेरी दुआएं नेहरू और उनके सहयोगियों की सहायता करेगी।'' वे एक ऐसे व्यक्ति की भांति मद्रास लौटे थे जिसका मोहभंग हो चुका था।

पुनः मुख्यमंत्री के रूप में राजाजी

मद्रास वापस लौटने के बाद उन्होंने फैसला लिया कि वे अपना समय *कल्कि* के लिए लेख लिखने में व्यतीत करेंगे और साहित्यिक लोगों की संगत में काफी वक्त गुजारेंगे। साहित्यिक कार्य आरंभ करने से पूर्व वे दक्षिण के एक रेसॉर्ट कोर्टेलम गए ताकि उन्हें पूरी तरह से आराम

मिल सके और वह अपनी खोई हुई सेहत को वापस हासिल कर सकेँ। उनके साथ टी.के.सी कल्कि(3) जैसे साहित्यिक व्यक्ति तथा अन्य लोग भी थे।

उस समय पर, मद्रास एक समिश्रित राज्य था और वर्ष 1952 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस ने वहां पूर्ण बहुमत खो दिया था। हालांकि वह वहां पर एकमात्र बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर आई थी। कम्युनिस्ट स्वतंत्र विधायकों तथा छोटे दलों की सहायता से सरकार का गठन करने का प्रयास कर रहे थे। उस समय कम्युनिस्ट पार्टी न तो लोकतंत्र में विश्वास करती थी और न ही सरकार के व्यवस्थित स्वरूप में तथा उनका मुख्य उद्देश्य बाहर और भीतर से लोकतंत्र तथा संविधान को विकृत कर देना और भ्रम की स्थिति पैदा करना तथा हिंसक माध्यमों से देश पर कब्जा कर लेना था। उनकी निष्ठा पर भी संदेह व्यक्त किया जाता था क्योंकि वे अपने आदर्श के रूप में सोवियत संघ और चीन की ओर देखा करते थे (दोनों ही देश उस समय शक्तिशाली और एक साथ थे)। तमिलनाडु कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष कामराज, जिनके राजनैतिक जीवन में राजाजी के साथ बहुत अच्छे संबंध नहीं थे, ने महसूस किया कि यदि कांग्रेस सरकार के गठन का कोई भी संभावित योग बन सकता है, तो उसमें राजाजी ही कोई चमत्कार कर सकते हैं। राजाजी उस समय तक सार्वजनिक जीवन से सेवानिवृत्त हो चुके थे और वे यह उत्तरदायित्व उठाने के इच्छुक नहीं थे।

सी. सुब्रमण्यम सहित मद्रास में अग्रणी नेताओं के उन्हें मनाने के सभी प्रयास व्यर्थ चले गए। राजाजी ने शांत भाव से उन्हें परामर्श दिया कि वे या तो राष्ट्रपति शासन लागू करा लें या फिर ईश्वर से प्रार्थना करें। उनके इनकार कर देने के बावजूद, कांग्रेस विधानमंडल दल ने उन्हें अपना नेता चुन लिया और राजाजी को कोई विकल्प नहीं दिया। पंडित नेहरू पर दबाव डाला गया कि वे पार्टी का नेतृत्व करने के लिए राजाजी से अनुरोध करें परंतु उन्होंने स्थानीय विधानमंडल दल पर ही यह विकल्प छोड़ दिया। अंततः जैसे-तैसे राजाजी मान ही गए।

इसके अलावा, राजाजी किसी भी सदन के सदस्य नहीं थे, जिसके बिना वे मुख्यमंत्री नहीं बन सकते थे। राजाजी चुनाव लड़ने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि एक तो उनकी आयु बहुत अधिक हो चुकी थी और पुनः निर्वाचन में खर्च होना था। लेकिन नेहरू ने दबाव डाला कि उन्हें निर्वाचित होना होगा। अतः कांग्रेस को नेहरू के निर्देश की अनदेखी करनी होती या राजाजी को खो देना होता जो कि कांग्रेस की सरकार बनाने का एक अवसर गंवाना होता।

अंततः राजाजी को तत्कालीन गवर्नर टी. प्रकाशम द्वारा, ''ऐसे व्यक्ति के तौर पर जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के मामलों में विशेष ज्ञान हासिल है'', उच्च सदन के लिए नाम निर्दिष्ट किया गया। राज्यपाल के पास निहित इस शक्ति का उपयोग ऐसे किसी गैर-सदस्य को मुख्यमंत्री बनाने के लिए किए जाने की कल्पना नहीं की गई थी, जो निर्वाचन में भाग लेने का अनिच्छुक भी हो। महान सांसद एच.वी. कामथ ने *राजाजी 93 स्मारिका* में यह टिप्पणी की है, ''क्या यह कोई विचित्र बात नहीं है...कि हमारे जैसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसा राजनीतिज्ञ जिसने अपने उल्लेखनीय रूप से दीर्घ एवं अत्यंत उत्कृष्ट कॅरियर के उतार-चढ़ावों के मध्य देश के सर्वोच्च पद को सुशोभित किया हो और उत्कृष्टता के साथ अन्य शीर्षस्थ पदों को भी धारण किया है जैसे केंद्रीय मंत्रिमंडल के मंत्री का पद और राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने वयस्क लोगों के मताधिकार द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव का सामना कभी नहीं किया हो?'' कानूनी औपचारिकताओं की तो पूर्ति कर ली गई लेकिन संविधान एवं लोकतंत्र की भावना का उल्लंघन किया गया।

यह मामला बहस की विषय-वस्तु हो सकता है कि क्या ऐसा व्यक्ति जिसने गवर्नर जनरल, गवर्नर और केंद्रीय मंत्री जैसे विशिष्ट पदों को धारण किया हो, वह किसी राज्य के मुख्यमंत्री जैसे निम्न पद को स्वीकार करेगा। राजाजी के मन में ऐसी कोई दुर्भावना नहीं थी और वह महसूस करते थे कि ''समस्त कार्य समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।'' उनके शब्दों में, ''एक झाड़ू को अपना कर्तव्य निभाना ही पड़ता है, चाहे भोजनालय हो या शौचालय।'' फिर भी यह दो मामले एक लंबे समय तक विवाद की विषय-वस्तु बने रहे।

विधान परिषद के सदस्य के रूप में राजाजी का नाम निर्देशन और नेता के रूप में उनका चुनाव कम्युनिस्टों द्वारा शासन हथियाने की संभावना को टालने के लिए जल्दबाजी में किया गया था और इसे नेहरू के समक्ष ''निष्पन्न कार्य (Fait accompli)'' के रूप में पेश किया गया था। यह संभावना थी कि नेहरू राजाजी की शर्तों से सहमत नहीं होंगे, परंतु वे एक चल रही व्यवस्था को अव्यवस्थित नहीं करना चाहते थे।

राजाजी को अप्रैल 1952 के प्रथम सप्ताह में मुख्यमंत्री के रूप में शपथ दिलाई गई, और उन्होंने कम्युनिस्टों को छोड़कर सभी समूहों के सहयोग को आमंत्रित किया। जब विधानसभा की पहली बार बैठक हुई तो सभा में विश्वास प्रस्ताव पेश करते हुए राजाजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि

कम्युनिस्ट ही वास्तव में उनके प्रमुख शत्रु हैं। राजाजी के तीखे शब्दों को यहां पुनः पेश किया गया हैः

> मैं यहां पर अपने देश को कम्युनिस्ट पार्टी के फंदों और खतरों से बचाने के लिए आया हूं। शुरू से अंत तक यही मेरी नीति रही है। मैं अपना दांव यहां सदन पटल पर खेल रहा हूं। मैं आपका प्रथम शत्रु हूं और मैं आपसे कह रहा हूं कि आप भी मेरे प्रथम शत्रु हैं, यही मेरी नीति है।

कम्युनिस्टों पर किए गए इस सीधे वार का नाटकीय प्रभाव हुआ। कम्युनिस्टों को छोड़कर सभी ने उन्हें अपना विश्वास मत दिया और उन्हें आसानी से बहुमत हासिल हो गया। हालांकि उनका पहला भाषण गैर लोकतांत्रिक और संसद के विरुद्ध माना गया। बाद में, उन्होंने कम्युनिस्टों के लिए मैत्रीपूर्ण भाषण देकर इस व्यवहार में सुधार कर लिया, और कम्युनिस्टों ने भी बाद में प्रशासन की योग्यता के लिए उनकी पर्याप्त प्रशंसा की।

उस समय राशनिंग प्रणाली चलन में थी और खाद्यान्नों की आवाजाही पर कड़े प्रतिबंध लागू थे। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन आठ औंस चावल (घटिया स्तर का) ही मिलता था। विवाह के निमत्रणों पर यह टिप्पणी लिखी होती थी, ''कृपया अपने साथ अपना राशन कार्ड लेकर आएं।'' हालांकि कोई भी अपना राशन कार्ड साथ नहीं लाता था, फिर भी विवाह के नियमित कार्यक्रम चलते रहते थे। यह प्रतिबंध पूर्ण रूप से 1938 से 1942 की अवधि के दौरान युद्धकाल में लगाए गए थे। परंतु यह बाद में स्थायी हो गए थे। इन प्रतिबंधों के बावजूद बेहतर क्वालिटी का चावल हर किसी के घर पर उपलब्ध रहता था, जिसे नेल्लूर आदि जैसे पड़ोसी राज्यों से चोरी-छिपे लाया जाता था, और इससे संबंधित अधिकारियों का विशेष ध्यान रखा जाता था। लेकिन इस व्यवस्था ने हर किसी को खुश कर रखा था। उपभोक्ताओं को उनकी मनपसंद वस्तु मिल जाती थी, और ''अवैध'' दुकानदारों का व्यवसाय खूब फल-फूल रहा था। साथ ही बिचौलिये भी अच्छा मुनाफा कमा रहे थे और राशन की दुकानें कम तोलकर लाभ उठा रही थीं। इस व्यवस्था में केवल मूल्यों का पतन हो रहा था।

चूंकि राजाजी एक चतुर प्रेक्षक थे वे जानते थे कि देश में खाद्यान्नों का पर्याप्त भंडार है और खाद्य नियंत्रण एवं उससे संबंधित कर्मचारियों ने ही यह कृत्रिम कमी पैदा की हुई है। साथ ही इस भ्रष्ट प्रणाली के इर्द-गिर्द निर्मित शक्तिशाली निहित स्वार्थ को तोड़ना आसान काम नहीं है।

अतः एक रात उन्होंने बिना किसी सूचना के आकाशवाणी पर यह घोषणा कर दी कि खाद्यान्न की राशनिंग और खाद्यान्नों से सभी प्रकार के प्रतिबंध तत्काल प्रभाव से समाप्त कर दिए गए हैं, और उन्होंने किसी को भी इस स्थिति का लाभ उठाने का कोई अवसर ही प्रदान नहीं किया। अनेक अर्थशास्त्रियों और सिविल अधिकारियों ने खाद्यानों की कमी तथा भूख से होने वाली मौतों की भविष्यवाणियां कीं। राजाजी इससे बिल्कुल ही विचलित नहीं हुए और उन्होंने जवाब दिया कि वे अपने देश तथा अपने लोगों को अच्छी तरह से जानते हैं। ना तो अनाज की कमी हुई और न ही भूख के कारण किसी की मृत्यु ही हुई। इसके उलट, जो भी कार्य चोरी-छिपे किया जा रहा था, वह खुलेआम किया जाने लगा और खाद्यान्नों की कीमतों में भी गिरावट में होने लगी। संभवतः नियंत्रण के उन्मूलन के साथ यह राजाजी का पहला प्रयोग था और यह ''परमिट कोटा लाइसेंस राज'' के विरुद्ध उनके भविष्य के अभियान का परीक्षण था।

उन्होंने जमींदारों और उनके लिए खेती करने वालों श्रमिकों के बीच होने वाले निरंतर झगड़ों तथा अनेक कृषक खेतीहरों को उनकी जमीन से गैर औचित्य के आधार पर बेदखल किए जाने के कारण विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में कम्युनिस्टों की लोकप्रियता में हो रही निरंतर वृद्धि पर भी विचार किया।

कृषकों के लाभ के लिए उन्होंने ''ऋण राहत कानून'' लागू किया, जिसमें उस स्थिति में कृषक के ऋणों की समाप्ति हो जाती थी, जब उसके द्वारा वास्तविक रूप से उधार ली गई मूल राशि की दो गुना राशि भुगतान ब्याज और मूलधन के रूप में किया जा चुका हो। इसके अतिरिक्त, उन्होंने ''पन्नायर अधिनियम'' नामक एक अन्य अधिनियम भी लागू किया, जिसके अनुसार भूमि से होने वाली कृषि पैदावार को भूमि के स्वामी और खेतीहर मजदूर के बीच 60:40 के अनुपात में बांटा जाता था और इस तरह उन्होंने खेती करने वाले श्रमिक की गैर औचित्यपूर्ण बेदखली को समाप्त कर दिया। इसके बावजूद यदि गैर औचित्यपूर्ण बेदखली की जाती थी तो उस भूमि में किराये पर श्रमिकों को खेती करने की मंजूरी प्रदान की जाती थी। कृषि श्रमिकों की मजदूरी में भी वृद्धि की गई। हालांकि इन व्यवस्थाओं पर भू-स्वामियों द्वारा काफी विरोध किया गया, उन्होंने उन्हें आश्वस्त कर दिया कि उन्हें कम परंतु निश्चित लाभ अवश्य मिलेगा। इसके साथ ही उनके लिए संतुष्ट श्रमिक एवं मजदूर अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस उपाय ने उनके बीच के विवादों का समाधान कर दिया और कम्युनिस्ट पार्टी की लोकप्रियता भी कम कर दी। यही एक मुख्य कारण था कि आज भी तमिलनाडु में कम्युनिस्टों के लिए मजबूत आधार मौजूद नहीं है।

इस बार भी उन्होंने सचिवालय के प्रांगणों को राजनीतिज्ञों से दूर रखने का प्रयास किया और सरकार एवं पार्टी की पहचान को अलग-अलग बनाए रखा। उन्होंने अधिकारियों को निर्देश दिया कि वे गुण के आधार पर अपने कर्तव्य का निर्वहन करें। बेहतर छवि के योग्य अधिकारियों द्वारा यह बात मानी गई कि प्रशासन को एक ऐसे उच्च स्तर तक ले जाया गया था, जो स्तर स्वतंत्रता से पूर्व अथवा उसके पश्चात कभी भी हासिल नहीं किया जा सका था। हालांकि राजाजी भाषायी आधार पर राज्य के विभाजन के सामान्यतः खिलाफ थे, वे आंध्र के लोगों द्वारा एक पृथक राज्य की सर्वसम्मति से की जाने वाली मांग को ठुकरा नहीं सके। जब वे 1937 में भी मुख्यमंत्री थे, उन्होंने तत्कालीन राज्य सचिव को लिखा था, ''प्रांत में कोई स्थायी प्रशासन तब तक नहीं बनाया जा सकता है, जब तक कि इसे आंध्र के लोगों की इच्छा अनुसार विभाजित नहीं कर दिया जाता...सुदृढ़ प्रशासन के हित में लोगों की मांग को मान लिया जाना चाहिए।''

लेकिन आंध्र वासी यह मानते थे कि केवल राजाजी के कारण ही आंध्र का विभाजन नहीं हो पा रहा है और पोट्टी श्रीरामुलू ने पृथक आंध्र की मांग के लिए उपवास रखा और मद्रास शहर में उनकी अप्रत्याशित रूप से मृत्यु हो गई। समस्त आंध्र क्षेत्र के चारों ओर दंगे और भयंकर खून-खराबा होना शुरू हो गया। इसी कड़ी में 1 अक्तूबर, 1953 को जल्दबाजी में पृथक आंध्र प्रदेश राज्य का गठन करना पड़ा। चंडीगढ़ की भांति मद्रास को दोनों राज्यों की संयुक्त राजधानी बनाने के प्रयास किए गए, परंतु ऐसे प्रस्ताव पर उनके अड़ियल विरोध के कारण, भले ही वह व्यवस्था अस्थायी ही बनाई जा रही थी, यह प्रयास असफल हो गया। आंध्रवासियों ने आज तक राजाजी को क्षमा नहीं किया।

राजाजी के सृजनात्मक मस्तिष्क का सर्वाधिक उत्कृष्ट विचार अर्थात ऐतिहासिक ''शैक्षणिक सुधार'', दुर्भाग्यवश उनके मुख्यमंत्री पद की दूसरी अवधि की समाप्ति की शुरूआत बनकर रह गया।

उन्होंने शैक्षणिक सुधार के अपने विचार की अभिव्यक्ति बहुत पहले वर्ष 1907 में *हिंदुस्तान टाइम्स* में लिखे एक लेख में की थी और साथ ही इस बात को उन्होंने पुनः 8 अगस्त, 1949 को भी निम्न शब्दों में दोहराया था, जब वे गवर्नर जनरल थेः

> मैं प्राथमिक शिक्षा के कर्णधारों को यह सुझाव देने का साहस कर रहा हूं कि क्या हम स्कूलों के लिए सप्ताह में तीन दिनों से ही संतुष्ट नहीं हो सकते हैं।

> हमारे स्कूल...तब एक सप्ताह में छात्रों को दो समूहों को शिक्षा दे पाएंगे। वे बालकों को अन्य चार दिनों तक उनके अभिभावकों के साथ कार्य करने का अवसर देंगे। (गांवों में) घर, घर तो होते ही हैं, साथ ही व्यापार के स्कूल भी होते हैं, और अभिभावक शिक्षक भी होते हैं जिनसे बालक शिक्षा (व्यवसाय की) ले सकते हैं।

उन्होंने उम्मीद की थी कि विधानसभा से मंजूर कराए बगैर जून 1953 में आरंभ की गई इस योजना का व्यापक स्वागत किया जाएगा। महान अर्थशास्त्री और बाद में भारत के राष्ट्रपति और केंद्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड के अध्यक्ष डॉ. जाकिर हुसैन ने इस योजना की सराहना की तथा इसका स्वागत किया। बिहार ने इसे अपनाने पर विचार किया। आचार्य कृपलानी ने महसूस किया कि यह युवाओं को शिक्षा प्रदान करने का सर्वाधिक वैज्ञानिक तरीका है। परंतु मद्रास में इस योजना का कड़ा विरोध किया गया और उनके ईवीआर एवं अन्नादुरै जैसे राजनैतिक विरोधियों ने इसे गैर ब्राह्मण छात्रों को उनके पिता के व्यवसाय तक ही सीमित रखने के लिए एक ब्राह्मण द्वारा किए गए छल के रूप में इसकी निंदा की। उनका तर्क था कि इस योजना का आशय ब्राह्मणों और जाति व्यवस्था की प्रधानता को कायम रखना है, तथा इस तर्क का जनता के मन मस्तिष्क पर अत्यंत घातक प्रभाव पड़ा। विपक्ष की भावनाएं सुस्पष्ट थीं और राजाजी ने माना कि उनकी शिक्षा नीति की वजह से उनकी सामान्य राजनैतिक लोकप्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

यहां तक कि विधानसभा को उसके अध्यक्ष द्वारा ''टाई ब्रेकर'' में निर्णायक मत देकर इस योजना को गिराने से बचाना पड़ा और उन्होंने बाद में इस योजना को पूरी तरह विचार-विमर्श के लिए एक समिति को सौंप दिया, इस प्रकार यह सुधार बिना किसी परीक्षण के और बिना किसी चर्चा के दफन हो गया। यह बात सामने आई कि जब उनके सुधार के विवरणों और विविक्षाओं का वर्णन पांच अथवा छह वर्ष पश्चात कामराज को किया गया, तो उन्होंने राजाजी की बुद्धिमत्ता की जमकर सराहना की। यह भी महसूस किया कि यह योजना ग्रामीण से लेकर अर्धशहरी क्षेत्रों तक प्रशिक्षित मानव शक्ति के गढ़ के रूप मे दक्षिण भारत को अत्यधिक मदद कर सकती थी। उन्होंने राजाजी पर आरोप लगाया कि उन्होंने इस योजना के विवरणों का वर्णन उन्हें अथवा अपने सहयोगियों और विधानसभा के सदस्यों के साथ नहीं किया। यदि उन्होंने ऐसा किया होता

तो कामराज ने इस योजना को इस प्रकार से आगे बढ़ाया होता जैसे यह विचार उनका अपना है और इस पर किसी भी प्रकार से साम्प्रदायिक रंग चढ़ने नहीं दिया जाता।

राजाजी के मंत्रिमंडल में तत्कालीन शिक्षा मंत्री जी.सुब्रमण्यम ने बाद में टिप्पणी की कि राजाजी की योजना बहुत ही समझदारी के साथ परिकल्पित शैक्षणिक सुधार थी और यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि इसे क्रियान्वित नहीं किया गया।

आंध्र के विभाजन के पश्चात, कांग्रेस तमिलनाडु में बहुमत में थी और राजाजी की अनिवार्यता अब दृश्य से गायब हो चुकी थी। इन सभी कारणों ने कांग्रेस के अध्यक्ष कामराज को यह सोचने पर विवश कर दिया कि इस योजना को छोड़ दिया जाए और नेतृत्व में भी परिवर्तन किया जाए। हालांकि राजाजी ने यह समझा कि कामराज उनकी पीठ में छुरा भोंक रहे हैं। लेकिन उन्होंने यह महसूस नहीं किया कि कामराज तो केवल योजना के विरुद्ध जनता के तीखे विरोध और उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए अपना कर्तव्य निभा रहे हैं।

इन घटनाओं ने राजाजी को विधानसभा में 25 मार्च, 1954 को यह वक्तव्य देने के लिए विवश कर दिया कि वे ''खराब स्वास्थ्य के कारण अपने पद से इस्तीफा दे रहे हैं'' और उन्होंने शैक्षणिक योजना अथवा अपने चारों ओर व्यक्त हो चुकी कड़वाहट का कोई उल्लेख नहीं किया। उन्होंने अंततः 13 अप्रैल, 1954 को इस्तीफा दे दिया। कामराज को उनके स्थान पर मुख्यमंत्री बनने के लिए चुन लिया गया।

राजाजी को स्वतंत्र भारत के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार भारत रत्न से 26 जनवरी, 1955 को सम्मानित किया गया। वास्तव में, राजाजी द्वारा दिए गए अमूल्य योगदान के लिए प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा यह वैयक्तिक रूप से उन्हें मान्यता दी गई। इससे उन्हें अवश्य ही अत्यंत संतुष्टि मिली होगी।

अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात राजाजी ने तुलनात्मक रूप से शांत जीवन व्यतीत किया। मुख्य रूप से उन्होंने अपना ध्यान साहित्यिक गतिविधियों की ओर समर्पित कर दिया, जैसे उन्होंने *रामायण* और *महाभारत* पूरी की और अपने पुराने मित्रों जैसे ए.वी. रमण, सदाशिवम और अन्य के साथ समय बिताया।

स्वतंत्र पार्टी का गठन

हालांकि राजाजी सक्रिय सार्वजनिक जीवन से सेवानिवृत्त हो चुके थे, उनका मस्तिष्क इतना सतर्क था कि उन्हें चुप बैठने नहीं देता था और उनकी चेतना इतनी दृढ़ थी कि अन्याय के खिलाफ हर स्थिति में आवाज उठाती थी।

उन्होंने अपने विचारों को सार्वजनिक बैठकों और प्रिंट मीडिया विशेष रूप से तमिल पत्रिका *कल्कि*(4) और अंग्रेजी साप्ताहिक *स्वराज्य* के माध्यम से विभिन्न विषयों को जनता तक पहुंचाया, जैसे चिकित्सा, राजनीति, अर्थशास्त्र, परमाणु हथियार, अंग्रेजी भाषा का महत्व और इसे अपनी राजभाषा बनाने की जरूरत। उनकी बैठकों और लेखों का उत्सुकता के साथ स्वागत किया जाता था, तथा उनका व्यापक रूप से अनुसरण किया जाता था। विभिन्न विषय क्षेत्रों से आए अतिथियों के साथ उनके नियमित संपर्क और प्रेस में छपी खबरों ने उन्हें राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर हो रही राजनैतिक गतिविधियों के बारे में निरंतर अवगत रखा। उन्होंने यह भी महसूस किया था कि कांग्रेस अब विशालतम अधिकार वाली पार्टी बनकर रह गई है और नेहरू इसके निर्विवाद नेता बन चुके हैं। कांग्रेस में उनकी आलोचना करने वाला कोई नहीं है। यदि कभी कोई आलोचना होती भी है, तो नेहरू रोष प्रकट करते हैं और आलोचना करने वालों को शांत कर देते हैं।

राजाजी हमेशा से ही लोकतंत्र में एक प्रभावशाली विपक्ष के महत्व और उसकी जरूरत पर बल देते रहे थे। उनकी स्वयं की अभिव्यक्ति के मुताबिक, ''एक सशक्त विपक्ष के बिना लोकतंत्र बगैर ब्रेक की मोटरकार की तरह है और वह किसी भी समय दुर्घटनाग्रस्त हो सकता है।'' संभवतः भारतीय राजनैतिक जीवन के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण योगदान उन्होंने दिया है, जो अन्य कोई भी नहीं दे सकता, वह स्वतंत्र पार्टी की स्थापना है। इस तरह उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कांग्रेस का विकल्प संभव है। यदि केंद्र और राज्यों में उचित रूप से कोई स्थायी गैर-कांग्रेसी सरकार कार्य कर रही है तो उसके बीज राजाजी ने 1959 में बोए थे।

समय के साथ ही, यदि असंभव नहीं तो यह बात मुश्किल जरूर है कि 50 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध करने के लिए किसी नई राजनैतिक पार्टी की स्थापना करने की नितांत असंभवता की कल्पना भर भी की जाए। कांग्रेस हमेशा से ही स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी रही है और इसके गांधी जैसे नेता रहे हैं। उनके राजनैतिक ''उत्तराधिकारी'' नेहरू, सरदार पटेल, जय

प्रकाश नारायण, राजाजी आदि रहे हैं और नेहरू तो स्वतंत्रता के बाद से सत्तारूढ़ पार्टी एवं सरकार का नेतृत्व करते आ रहे हैं। अतः कांग्रेस और नेहरू लोगों द्वारा देशभक्ति के पर्याय के रूप में पहचाने जाते हैं और उनका विरोध करने वाले किसी अन्य व्यक्ति को ‘‘राष्ट्र-विरोधी’’ माना जाता है।

इसके अलावा, नेहरू के पास गरीब वर्गों और अल्पसंख्यकों के मसीहा के रूप में व्यापक जनसहयोग भी मौजूद है, वे अनेक लोकप्रिय उपायों की शुरूआत करने में भी सफल रहे, जैसे (i) सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की स्थापना, (ii) विभिन्न लाइसेंसों और नियंत्रणों की शुरूआत, (iii) कृषि भूमि पर सीमा, (iv) भूमि सीमा, (v) संविधान में अनके बार संशोधन आदि और इन सभी कार्यों ने उन्हें ‘‘गरीबों के मित्र’’ की छवि प्रदान की। उन्होंने स्वयं को एक देश-भक्त और दिव्य दृष्टा के रूप में शिक्षित मध्यम वर्ग का चहेता भी बना लिया था। व्यापक दृष्टिकोण के साथ लोकप्रियता के संदर्भ में उनके समान क्षमता का कोई अन्य सानी नहीं था। विभिन्न नियामक ‘‘सामाजिक नीतियों’’ जैसे लाइसेंसिंग नियंत्रण इत्यादि ने उद्योगपतियों, राजनेताओं और शिक्षित उच्च वर्ग के एक नए वर्ग का सृजन कर दिया जो कि उस प्रणाली के लाभार्थी थे और सरकार के संरक्षण पर निर्भर थे। वे नेहरू अथवा कांग्रेस का विरोध करने और उनके विरूद्ध खुले तौर पर सामने आने में अनिच्छुक थे। जो कोई भी नेहरू अथवा कांग्रेस के खिलाफ बोलता था उसे स्वयं नेहरू द्वारा क्रांतिकारी, देश विरोधी अथवा पूंजीपतियों का मित्र आदि कहकर चुप करा दिया जाता था।

इस सब के अलावा, जो एक दल कांग्रेस के सम्मुख खड़ा था, वह श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा उग्रवादी हिंदुत्व को उत्तेजित करके स्थापित किया गया जनसंघ था। यह उत्तर भारत में खासा लोकप्रिय था। यह भी इसी असंभव स्थिति में फंसा हुआ था कि राजाजी ने एक विरोधी पार्टी के गठन को प्रोत्साहित करने का विचार कर लिया है।

राजाजी ने परिकल्पना कर ली थी कि नेहरू की गलत नीतियों ने समाज में भ्रष्ट धनाढ्य वर्ग के एक ऐसे नए वर्ग का सृजन कर लिया है जो राष्ट्र के वित्तीय संसाधनों को डकार रहा है। वे इस बात से पूरी तरह आश्वस्त थे कि (i) संविधान में बार-बार किए जाने वाले संशोधनों, (ii) नियामक औद्योगिक नीति जिसे उन्होंने ‘‘परमिट-लाइसेंस-कोटा राज’’ नाम दिया था, (iii)

राष्ट्रीयकरण, सहकारिता कृषि की नीतियों और अन्य सामाजिक नीतियों का विरोध किया जाना चाहिए।

इन सभी बाधाओं के होने के बावजूद, वे एन.जी. रंगा, सरदार पटेल के अधीन भारत सरकार के पूर्व सचिव वी.पी. मेनन, के.एम. मुंशी जैसे नेताओं, अग्रणी व्यवसायियों जैसे होमी मोदी, ए.वी. राव आदि को अपने साथ शामिल करने में सफल हो गए जो कि मात्र लोकप्रियता के स्थान पर विशिष्ट कार्यों से जुड़े व्यक्ति थे। लेकिन उनकी पार्टी ने विपक्षी पार्टी के सृजन के बीज बो दिए और लोगों को ''परमिट-लाइसेंस-कोटा राज'' की सटीकता पर खुलकर बहस करने और उस पर प्रश्न करने में उनकी मदद की।

उसी समय के दौरान मीनू मसानी ने विदेश एवं आर्थिक मामलों में सोवियत और कम्युनिस्टों की नीति के प्रति नेहरू के झुकाव के विषय में राजाजी से बात की। उन्होंने राजाजी से अनुरोध किया कि वे नेहरू की वामपंथी नीतियों का विरोध करने के लिए विपक्षी दल का नेतृत्व करें। राजाजी ने अपनी आयु के कारण अपनी असमर्थता जताई और अन्य नेताओं जैसे जय प्रकाश नारायण, सी.डी. देशमुख, जी.पी. रामास्वामी अय्यर तथा अन्य से नेतृत्व करने का अनुरोध किया। लेकिन कोई भी इसके लिए आगे नहीं आया। अंततः राजाजी ने स्वयं ही यह चुनौती स्वीकार कर ली। उन्होंने 8 मई, 1959 को मद्रास में एक नई पार्टी ''स्वतंत्र पार्टी'' के गठन की घोषणा की। एन.जी. रंगा इसके प्रथम अध्यक्ष थे और मीनू मसानी महासचिव थे। राजाजी ने प्रत्येक माह दो अथवा तीन बैठकों को संबोधित किया और प्रत्येक सप्ताह अखबारों में औसतन दस से बीस कॉलम लिखे।

सार्वजनिक जीवन से संन्यास लेने के पश्चात लोगों में चेतना और जागरूकता का संचार करने के लिए उनके लेख लगभग 2,000 पन्नों के हैं। उनके एक छोटे से भाग को भी उद्धृत करना संभव नहीं है।

उनके दृष्टिकोण की दिशा को समझने या उसके विषय में जानने के लिए कुछ लोगों को, जो भी वर्णनात्मक प्रकृति के हैं, नीचे उद्धृत किया जा रहा हैः

i) ''संविधान रहन-सहन, कार्य करने और कमाने के लिए नागरिकों के सभी अधिकारों की रक्षा करता है और इनकी गारंटी देता है। उसकी संपत्ति को राज्य सरकार द्वारा वैध कारणों में और

औचित्यपूर्ण प्रतिपूर्ति के भुगतान पर धारण किया जा सकता है। इसके लिए कोई औपचारिक अथवा मनमानी नियत राशि की व्यवस्था नहीं की जा सकती है।

ii) ''हमें मूलभूत अधिकारों और संविधान की रक्षा वैसे ही करनी चाहिए जैसे विंस्टन चर्चिल ने हिटलर के खिलाफ ब्रिटेन की रक्षा की थी और एक सच्चे योद्धा की भावना रखते हुए, जो उन्हें प्रेरित करती थी, उन्होंने डर और हार की संभावना से कभी भी आत्मसमर्पण नहीं किया था।

iii) ''भूमि की सीमा तय करना बालक की परपीड़ा के समान है।'' साझी खेती अथवा संयुक्त स्वामित्व और सहकारी कृषि एक ऐसी योजना थी जो अनुभव अथवा सोच-विचार पर आधारित नहीं थी परंतु उन्होंने एक ऐसे देश में इसका प्रयास किया, ''जहां वैयक्तिक स्वतंत्रता उपस्थित है और बलात् श्रम अस्तित्व में है।

iv) ''कांग्रेस कम्युनिस्टों से उनके ब्रुश और रंग उधार ले रही है।

v) ''सत्य, एक अमूल्य बेल की तरह, आज एक तूफान के भीतर पेड़ का समर्थन खो चुका है और यह भूमि पर आ पड़ा है, बिना किसी रोकथाम के, और इन दोनों की ही हानि ताकत के लिए और भी अधिक भूख पैदा करेगी। साथ ही लोकतंत्र का स्थान पार्टी की तानाशाही ले लेगी जिसका प्रमुख श्रेय परमिट-लाइसेंस राज के लिए दिए जा रहे असीमित, गैर लेखांकित व्यापक वित्तीय समर्थन को दिया जा सकता है।

vi) ''समाजवाद को अपना नारा बनाने वाले सब लोगों द्वारा परिकल्पित किया जा रहा समाज पूरी तरह से राज-नियंत्रणवाद है। उनके अनुसार, बुद्धिमत्ता केवल राज्य में निवास करती है, और नागरिकों को राज्य द्वारा वह करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए जो वह अच्छा समझती है।

vii) ''एक समय की बात है, हममें से कुछ लोगों को याद होगा कि भ्रष्टाचार केवल कानून-व्यवस्था की जांच करने वाले कर्मचारियों और कुछेक न्यायालय-कर्मियों और भू-राजस्व विभाग तक ही सीमित था। लेकिन आज भ्रष्टाचार ने राष्ट्रीय उद्योग के समस्त क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है और नैतिक तानाशाही सार्वजनिक जीवन के सभी स्तरों पर मौजूद है। आज ऐसी कोई बुराई नहीं है जो राष्ट्र को उतनी बुरी तरह से प्रभावित कर रही है जितना कि राष्ट्रीय दुर्भाग्य के रूप में परमिट-लाइसेंस राज प्रभावित कर रहा है।

viii) ‘‘समाजवादी योजना और अधिकांशतः अत्यधिक व्यर्थ वस्तु बनकर रह गई है और इसके परिणामस्वरूप (क) राजनैतिक और वाणिज्यिक भ्रष्टाचार, (ख) मुद्रित मुद्रा, (ग) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कराधान में वृद्धि हो रही है, जिन सबके परिणामस्वरूप जीवनयापन के स्तर में वृद्धि हो रही है। बिना संपत्ति को उत्पन्न किए समाजवाद को प्राप्त करने का प्रयास रामायण में उल्लेखित छद्म स्वर्ण हिरण का पीछा करने के समान है।

ix) ‘‘समाजवाद आज मतदाताओं को लुभाने के लिए एक खोखला और भ्रामक नारा बनकर रह गया है और कम्युनिस्ट इस बात से खुश हैं कि यह भ्रम की स्थिति बनी हुई है।

x) ‘‘गांधीजी की सहस्राब्दि के वर्ष में भारत में विडंबना की स्थिति राष्ट्रीय कल्याण और अनुशासन के आचरण के लिए राज्य की ताकत पर लगभग पूर्ण निर्भरता के प्रति रूझान है।

xi) ‘‘आकर्षक कल्याणकारी राज्य औद्योगिक क्षेत्र में आडंबरपूर्ण क्रियाकलाप करने के लिए आदर्श एवं व्यापक खर्च करता है, और मौजूद विधि सम्मत स्वामियों को बेदखल करने और ऐसे लोगों की भूमिका वितरण करने, जिनके पास प्रबंधन के लिए कोई पूंजी नहीं है, के लिए योजनाएं बनाता है और इस प्रकार उन्हें प्रदान की गई हैसियत का पूरी तरह से प्रयोग करता है और यह सभी कार्य उनके मतों को हासिल करने के लिए किए जाते हैं। ताबड़तोड़ तरीके से हासिल किए गए व्यापक विदेशी ऋण हमारे समाजवाद के अव्यव बन गए हैं और यह एक ऐसी पद्धति है जो उत्पादन के लिए समस्त स्वाभाविक प्रोत्साहनों को समाप्त करती है। और यह समस्त प्रक्रिया उस शब्द पर आकर खत्म होती है जिसे मंगलकारी भाषा में विदेशी मुद्रा की सख्ती कहा जाता है, जो कि वास्तव में ‘‘दिवालियापन’’ कहलाता है।

xii) ‘‘उत्पादन के नियम प्रकृति के नियम हैं और इसलिए ये अपरिवर्तनीय हैं। खाद्य उत्पादन अथवा कोई अन्य उत्पादन श्रम, बुद्धिमत्ता और उन लोगों द्वारा निवेश पर निर्भर करता है जिनके पास वस्तु के प्रबंधन में ठोस वैयक्तिक रुचि है। यदि इन अव्ययों के सौहार्द्र पूर्ण मिश्रण का अभाव है, तो उत्पादन प्रभावित होता है। ‘राज्य’ उत्पादन नहीं कर सकता है, वह केवल कर लगा सकता है या बाधा या प्रोत्साहित कर सकता है, लेकिन उत्पादन नहीं कर सकता। किसी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम में कार्यकुशलता और एकीकरण की उस समय अपेक्षा नहीं की जा सकती है जब आपके पास एक ‘उबलती हुई आइसक्रीम’ और ‘शाकाहारी बाघ’ है।

xiii) ‘‘लोगों और सरकारों को इस बात का एहसास होना चाहिए कि कतिपय राजकोषीय और आर्थिक विधियां स्वतः सिद्ध होती हैं। समस्त आर्थिक सहायता प्राप्त लाभों को अंततः करों और शुल्कों के रूप में अदा करना होता है। यदि शहरी फैक्टरी के श्रमिकों को सस्ता चावल मिलता है तो नियोजक उन्हें उचित मजदूरी प्रदान करने से बच जाता है और कृषक से कहा जाता है कि वह अपना कार्य तथा पूंजी के लिए उचित पारिश्रमिक से कम पर ही संतुष्ट हो जाए।

xiv) ‘‘जब तक कि केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा किया जा रहा खर्च बहुत मात्रा में कम नहीं हो जाता आर्थिक स्थिति में किसी भी तरह का सुधार नहीं हो सकता है। हम एक दुष्चक्र में फंस गए हैं जहां सरकार द्वारा किए जा रहे खर्च और उनके परिणामस्वरूप उच्च कराधान ने निजी उद्योगों को स्थिर करने का काम किया है। हमें किसी भी कीमत पर इस दुष्चक्र को ध्वस्त करना होगा। सरकारी कर्मचारियों को दस अथवा इससे कम वर्षों के लिए ‘पेंशन’ दी जानी चाहिए और यह कदम उपयोगी सिद्ध होगा क्योंकि इसके बिना दुष्चक्र को सुधारा नहीं जा सकेगा।

xv) ‘‘कांग्रेस में स्वतंत्र चिंतन का शनैः शनैः पतन हो चुका है और समाजवाद को अपना लिया गया है। ठीक वैसे ही जैसे तोतों को रटना सिखाया जाता है।

xvi) ‘‘कुछ भले लोगों को घबराहट हो रही है क्योंकि राजाजी और नेहरू झगड़ रहे हैं...जी हां, उनसे सहमत नहीं था और मैंने स्पष्टतः के लिए कड़ी भाषा का प्रयोग किया। लेकिन क्या मित्रों में मतभेद नहीं होता है और फिर भी वह एक-दूसरे के साथ प्यार से रहते हैं।

xvii) ‘‘जब तक चुनावों का असंभव लगने वाला महंगा सौदा चलता रहेगा, सांसदों और विधायकों के वेतन और भत्तों में वृद्धि करने के द्वारा किसी सार्वजनिक प्रयोजन की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। गरीब आदमी आगे नहीं आ सकते हैं जब तक कि वह स्वयं को किसी ऐसे व्यक्ति को न बेच दें जो बहुत अमीर हों।

xviii) ‘‘हाल ही में ऐसा अनेक बार स्वीकार किया गया है और यह दर्शाने के लिए अन्य साक्ष्य भी सामने आए हैं कि लाइसेंस-परमिट-राज के परिणामस्वरूप अमीर व्यक्ति अमीर बने हैं और गरीब और गरीब हुए हैं। संपत्ति का समान वितरण केवल कार्य के माध्यम से ही किया जा सकता है। अतः उपयोगी रोजगार के लिए गुंजाइश का सृजन किया जाना चाहिए। कुछ केंद्रों में

बड़े औद्योगिक संयंत्र अन्य चीजों की प्राप्ति कर सकते हैं। लेकिन वे रोजगार के लिए व्यापक और भली-भांति फले हुए अवसर नहीं जुटा सकते हैं।

xix) ग्रामीण वर्गों को रोजगार जुटाने के लिए बड़े शहरों की ओर नहीं भागना चाहिए वहां गंदी बस्तियों में नहीं रहना चाहिए क्योंकि इससे वे सभी प्रकार के दमन के पात्र बन जाते हैं और उनके जीवन की परिस्थितियां अत्यंत निम्न हो जाती हैं। उन्हें अपने ग्रामीण घरों के निकट ही काम ढूंढना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए छोटे उद्योग स्थापित किए जाने चाहिए और उन्हें देश में समान रूप से फैलाया जाना चाहिए।

xx) ''लाइसेंसों और परमिटों के वितरण में बहुत व्यापक भाईचारे पर काफी हो-हल्ला मचा है। इस प्रणाली की जड़ें ही विषैली हैं और इससे भ्रष्टाचार का बोलबाला होना निश्चित है। यदि हम इसे समाप्त नहीं कर सकते हैं तो हमें अपना बौद्धिक ज्ञान और ऊर्जा नुक्सानदायक प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग में लानी चाहिए। जो एक अधिकार को जन्म देती है और स्वस्थ प्रतिस्पर्धा रोकती है और सत्तारूढ़ दल के अत्यंत विशाल आर्थिक ताकत से ओत-प्रोत करती है जो इसका उपयोग पार्टी के कार्यों के लिए करते हैं। कांग्रेसी काफी समृद्ध प्रतीत होते हैं। क्या उन्होंने नया व्यवसाय अपना लिया है और वे पैसा कमा रहे हैं? तो फिर उन्होंने पैसा कैसे बनाया है?

xxi) अपनी-अपनी संबंधित पार्टियों के लिए सरकार की शक्ति हासिल करने की पार्टी नेताओं एवं उनके सहयोगियों की आकांक्षा किसी महामारी की भांति फैलती जा रही है। क्या सरकारें केवल कानून और व्यवस्था के संगठन ही बनकर रह गईं हैं तथा औद्योगिक विकास उद्यमियों पर छोड़ दिया गया है, यह बीमारी हमारी राजनीति को भी कब्जे में नहीं ले लेगी? इसका मुख्य कारण परमिट-लाइसेंस राज है।

xxii) ''कांग्रेस ने अत्यंत घातक रूप से यह दर्शाया है कि यह पार्टी के आकाओं को धन की शक्ति प्रदान करती है और अन्य सभी पार्टियां इससे संक्रमित हो गई हैं। साथ ही यह इच्छा किसी भी व्यक्ति को उसके बेहतर निर्णय के खिलाफ कार्य करने के लिए मजबूर करती है और वह जानबूझकर गलत काम करता है।

xxiii) ''राज्य सरकारों ने अब परमिट-लाइसेंस राज में बड़ा भाग मांगना शुरू कर दिया है, जोकि परामर्शक हिस्सा मात्र नहीं है बल्कि सीधी हिस्सेदारी है। बुनियादी त्रुटि को जड़ से ही समाप्त कर देना चाहिए और उसे भाई-भतीजावाद एवं राजनैतिक लाभ हासिल करने के लिए क्षेत्र में वृद्धि करके आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।

xxiv) ''नैतिक पुनः सृजन की उम्मीद केवल तभी की जा सकती है, जब सरकार दृढ़ रूप से परमिट-लाइसेंस राज को खत्म कर दे। व्यापार और उद्योग औद्योगिक लाइसेंसों और परमिटों से मुक्त होने चाहिए। जिसके बिना हम नैतिक पर्यावरण में सुधार की आशा नहीं कर सकते हैं।

xxv) ''सचिवालय के डेस्कों पर उत्पादित किए जाने वाले सकल वृद्धि प्रतिशत की उम्मीद करने के कोई मायने नहीं हैं। जब तक कि सत्तारूढ़ पार्टी परमिट-लाइसेंस प्रणाली के माध्यम से हासिल किए गए इसके वैयक्तिक उत्पादकों पर समग्र नियंत्रण से खुद को वंचित न कर दें और अर्थव्यवस्था को स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में न पनपने दे।

xxvi) ''भारत में उत्पादन तीन पैरों की दौड़ अथवा बोरी-दौड़ में भाग ले रहा है और सरकार की मध्यस्थता एवं नियंत्रण इसमें बाधा डाल रहे हैं। कोई भी उद्योग अथवा व्यवसाय उस समय सुचारू रूप से नहीं चल सकता है, जब किसी अनिवार्य विषय में प्रत्येक मोड़ पर कोई अधिकारी नितांत अड़ियल रवैये या इससे भी बदतर तरीके से सहयोग नहीं प्रदान करता है। इसके बावजूद, 'निजी क्षेत्र' ने 'सरकारी क्षेत्र' की तुलना में उत्पादन का बड़ा भाग पैदा किया है।''

मद्रास के मैरीना बीच पर हुई एक जनसभा में नेहरू ने राजाजी पर ''गुस्से में'' बोलने का और ''बिना वजह गुस्से से मस्तिष्क के भ्रम'' का आरोप लगाया और इच्छा जताई कि वे सीधे-सीधे कहें, ''राजाजी क्या चाहते हैं'', साथ ही ''भारत की वैसी ही तस्वीर बना दें, जैसी वे बनाना चाहते हैं।''

अगली सुबह, *दि हिंदू* में राजाजी का उत्तर आया थाः

> मैं चाहता हूं कि भारत का माहौल उस डर से मुक्त हो, जैसा आजकल हो गया है, जहां उत्पादन या व्यापार के कठिन काम में जुटा हुआ ईमानदार व्यक्ति अधिकारियों, मंत्रियों और पार्टी के आकाओं के हाथों में ठगे जाने के भय से आजाद होकर अपना कारोबार कर सके।

मैं ऐसा भारत चाहता हूं, जहां योग्यता और ऊर्जा को कार्य करने का स्कोप हासिल हो। साथ ही इसमें उन्हें किसी के आगे नाक न रगड़नी पड़े और अधिकारियों एवं मंत्रियों से विशेष वैयक्तिक अनुमति प्राप्त करने की जरूरत न हो। जहां उनके प्रयासों का मूल्यांकन भारत और विदेशों में खुले बाजार द्वारा किया जाए।

मैं चाहता हूं कि परमिट-लाइसेंस का गहरा कोहरा हम लोगों पर हावी न हो जाए। मैं चाहता हूं कि राज्य नियंत्रणवाद (राज्यवाद) समाप्त हो जाए और सरकार अपने सुचारू रूप से अपने कार्यों को अंजाम देने लगे।

मैं चाहता हूं कि सरकारी प्रबंधन की अकुशलता दूर हो जाए जहां निजी प्रबंधन की प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था कार्यों की देख-रेख करे।

मैं चाहता हूं कि इस परमिट-लाइसेंस राज का भ्रष्टाचार दूर हो जाए।

मैं चाहता हूं कि कानून और नीतियों को प्रशासित करने के लिए नियुक्त किए गए अधिकारी सत्तारूढ़ पार्टियों के आकाओं के दबावों से मुक्त रहें तथा वे धीरे-धीरे निर्भीक ईमानदारी के मानकों को पुनः स्थापित कर दें, जिनकी वे कभी पैरवी किया करते थे।

नेहरू कहते हैं कि कभी भी किसी परमिट चाहने वाले ने उनसे अनुरोध नहीं किया। सच है। लेकिन उनके मातहत 150 मंत्रियों की एक पूरी फौज है और अनेक पेशेवर कांग्रेसी इन लोगों को कोटा और परमिट दिलाने में मदद करने संबंधी इस नए कारोबार में लगे हैं।

मैं सभी के लिए वास्तविक रूप से समान अवसर चाहता हूं और परमिट लाइसेंस राज द्वारा सृजित किसी भी निजी एकाधिकार को नहीं चाहता हूं।

मैं एक ऐसा भारत चाहता हूं जहां किसानों को नेहरू के लिए सहकारी कृषि के माध्यम से हवाई किले बनाने के लिए उनकी जमीनों को छोड़ने के लिए प्रोत्साहित या भ्रमित न किया जाता हो।

मैं संपत्ति, भूमि और अर्जन के अन्य सभी रूपों के सभी स्वामियों के लिए सुरक्षा चाहता हूं। उनके ऊपर डैमोकल की तलवार भी नहीं लटकी रहे जो

उन्हें स्वामित्व हरण की धमकी देती हो। साथ ही उन्हें औचित्यपूर्ण और संपूर्ण प्रतिपूर्ति का भुगतान भी प्राप्त न हो पाए जो कि सही सिद्धांतों के आधार पर न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा निहित की गई हो, न कि राजनैतिक विधान की मनमानी के अनुसार।

मैं चाहता हूं कि मौलिक अधिकारों को उनके मूल स्वरूप और अखंडित रूप में बनाए रखा जाए।

मैं एक ऐसा भारता चाहता हूं जहां उच्च प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर निजी पूंजी के निर्माण में बाधक न बनें और वे उद्यम और प्रयास को हतोत्साहित न करें।

मैं एक ऐसा भारत चाहता हूं जहां केंद्र का बजट मुद्रा स्फीति और अत्यंत उच्च कीमतों को पैदा न करे।

मैं एक ऐसा भारत चाहता हूं जहां राज्य पूंजीगत निवेश पर कर न लगाए जो कि किसानों की वर्तमान पीढ़ी के जीवन को दूभर बना देता है।

मैं चाहता हूं कि बड़े उद्योग की धन की शक्ति को राजनीति से अलग ही रखा जाए। लोकतंत्र को चलाना बहुत कठिन काम है। इसे पैसे की ताकत से नष्ट नहीं किया जाना चाहिए और अत्यंत खर्चीले चुनावों द्वारा आभासी नहीं बनाया जाना चाहिए तथा ऐसा नहीं होना चाहिए कि बड़े उद्योग सत्तारूढ़ पार्टी को धन राशि देकर समर्थन प्रदान कर रहे हों और बदले में उनसे विशेषाधिकार प्राप्त कर रहे हों या वे राज्य की विनियामक ताकत के डर से उसका साथ दे रहे हों।

मैं एक ऐसा भारत चाहता हूं जहां धर्म, एक बार फिर इंसानों के दिलों पर राज करे, लालच नहीं।

मैं चाहता हूं कि सहानुभूति और परोपकार की भावना स्वतंत्र रूप में कार्य करे तथा वह राज्य की उन योजनाओं द्वारा नियंत्रित न किया जाए जो अत्यधिक कराधान (Over-Taxation) और अत्यधिक केंद्रीकरण (Over-

Centralization) द्वारा सभी कल्याणकारी कार्यों पर एकाधिकार जमा लेती है।

मैं चाहता हूं कि राज्य को अपनी सीमाएं मालूम हों और वह मानवता की भावनाओं से कार्य करे, साथ ही नागरिक उनके द्वारा उस संबंध में नैसर्गिक रूप से प्राप्त पारंपरिक स्रोतों के माध्यम में आध्यात्मिक ज्ञान की अनुभूति करे।

मैं एक ऐसी सशक्त पार्टी चाहता हूं जो सत्तारूढ़ पार्टी की वास्तविक विरोधी पार्टी हो, चाहे वह कोई भी पार्टी क्यों न हो, ताकि लोकतंत्र के पहिये एक सीधी सड़क पर दौड़ें।

मैं चाहता हूं कि भारत विदेशों में अपने नैतिक बल को पुनः हासिल करे और मैं यह नहीं चाहता कि हमारे लोग यह सोचने के लिए विवश हों कि वह नैतिक प्राधिकार अभी तक नहीं खोया है, जो हम गांधी के दिनों में धारण किया करते थे।

नेहरू के विरुद्ध उनके कड़वे अभियान ने उन दोनों के बीच पारस्परिक प्रशंसा के भाव को किसी भी रूप में कम नहीं किया। स्वतंत्र पार्टी के गठन के पश्चात राजाजी की दिल्ली यात्रा के दौरान नेहरू (प्रधानमंत्री, 70 वर्ष) उस स्थान पर राजाजी से मिलने गए जहां वे दिल्ली में (दूसरी मंजिल पर) ठहरे हुए थे और यह जानना चाहा कि वे अभी कितने 'युवा' हैं।

नेहरू के अनुरोध पर, राजाजी ने गांधी शांति फाउंडेशन की ओर से आर.आर. दिवाकर और बी. शिवा राव की से मिलकर बने एक शिष्टमंडल का नेतृत्व किया, जिसका उद्देश्य संयुक्त राज्य (यूएस) से यह अनुरोध करना था कि परमाणु विस्फोटों को रोक दिया जाए। जब यह शिष्टमंडल यूएस सरकार के कैबिनट कक्ष के बाहर इंतजार कर रहा था, एक युवक वहां आया, उसने सबसे हाथ मिलाया और उन्हें लेकर पास ही स्थित राष्ट्रपति के कमरे में ले गया। राजाजी ने उस शख्स की ओर देखा जो उनसे लगभग एक फुट ऊंचा था और पूछा, ''क्या मैं संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के सान्निध्य में हूं?'' जिस युवा व्यक्ति ने उनका नेतृत्व किया था, वे स्वयं राष्ट्रपति कैनेडी थे।

राजाजी ने तर्कों की स्पष्टता, भाषण की अल्पावधि, भाषा की प्रभाविता, विनम्र व्यवहार और तथ्यों की सटीकता के साथ परमाणु निःशस्त्रीकरण के लिए मामला प्रस्तुत किया। राजाजी जानते

थे कि वे अपने कार्य में तत्काल ही सफल नहीं होंगे, पर वे इस बात से आश्वस्त थे कि वे विश्व समुदाय पर एक प्रभाव अवश्य छोड़ेंगे।

वह मुलाकात 20 मिनट के लिए ही निर्धारित थी, परंतु राष्ट्रपति ने लगभग 75 मिनट तक राजाजी के साथ विचार-विमर्श किया। वे समस्त मानव जाति के लिए विकिरण के प्रभावों की समस्या को प्रस्तुत करने के राजाजी के तरीके से बहुत प्रभावित हुए।

संयुक्त राज्य से लौटने पर राजाजी ने अपने लेख और भाषण जारी रखे। उसके बाद 27 मई, 1964 को नेहरू का निधन होने पर, लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने और उन्होंने ताशकंद में अयूब खान के साथ भारत-पाक शिखर-सम्मेलन में भाग लिया। राजाजी ने लाल बहादुर को उनके प्रयास पर आशीर्वाद दिया, ''ईश्वर इस बातचीत को शक्ति दे और हम पुनः ''कर सकते हैं'' की छवि के नए संस्करण में वापस न जाए।''

ताशकंद शिखर-सम्मेलन की सफलतापूर्वक समाप्ति पर शास्त्री ने राजाजी को पत्र लिखवाया, ''मैं पूरी तरह से आश्वस्त हूं कि हमने जो कुछ भी ताशकंद में किया है, आप उससे सहमत होंगे और उसे आपका पूरा-पूरा समर्थन मिलेगा। आशा है कि आप ठीक-ठाक होंगे।'' शास्त्रीजी की अकस्मात ही ताशकंद में मृत्यु हो गई।

इसके पश्चात, कामराज ने इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री निर्वाचित कर दिया क्योंकि वे नेहरू की पुत्री थीं और एक महिला होने के नाते उन्हें अधिक लोगों का समर्थन हासिल था। साथ ही अपने राजनैतिक अनुभवहीनता के कारण वे सबसे दबती भी थीं। यह बात भी सामने आई कि राजाजी ने बाद में कामराज को चेताया भी था कि उन्होंने इंदिरा गांधी को निर्वाचित कर, एक भारी भूल कर दी है और चूंकि वे एक स्वेच्छाचारी महिला हैं, वे अपना उद्देश्य पूर्ण होने के पश्चात उन्हें ही बाहर का रास्ता दिखा देंगी। राजाजी की बात बिल्कुल सही सिद्ध हुई और बाद में कामराज को इंदिरा गांधी के हाथों अनेक बार अपमान झेलना पड़ा।

एक युग की समाप्ति

संभवतः इस अवस्था में कश्मीर पर राजाजी के एक विचार को याद करते हुए अपनी बात को समाप्त करना उपयुक्त रहेगा, ''शेख अब्दुल्ला और कश्मीर एक साथ दृश्यमान इसलिए हुए हैं ताकि व्यक्तित्व या मान की हानि किए बगैर एक नई शुरूआत की जा सके। हमें बिना कोई

गलती किए पाकिस्तान को यह दिखा देना चाहिए कि कश्मीर के लोग भारत के साथ जुड़कर रहना चाहते हैं। केवल इसी से उनका मुहं बंद हो जाएगा। इस प्रक्रिया से दूर रहना ठीक नहीं क्योंकि इससे यह स्पष्ट होगा कि वे न तो पाकिस्तान से जुड़ना चाहते हैं और न ही भारत से, और वे किसी से जुड़े बिना मैत्रीपूर्वक रहना चाहते थे, और यह बात उचित नहीं है।''

उनका अंतिम संदेश (अपनी मृत्यु से 16 दिन पूर्व) भविष्यवाणी करता हैः ''सभी लोगों से मेरा यह आह्वान है कि जितना जल्द हो सके शिखर-सम्मेलन की बैठक होनी चाहिए...ताकि शिमला समझौते को उसकी वास्तविक पूर्णतः तक ले जाया जा सके।'' (स्वराज्य, 9 दिसंबर, 1972)

राजाजी का निधन 1972 में क्रिसमस के दिन हुआ और बीस साल बाद उनकी नीतियां पुनर्जीवित हुईं।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. राजाजी के 93 वर्ष पूर्ण होने का स्मरणोत्सव, टी.एस. सदाशिवम, एच.वी.आर. आयंगर, एस. नारायणस्वामी और जी.के. सुंदरम के सहयोग से मिलकर बनी ''राजाजी '93 स्मारिका'' समिति ने दिसंबर 1971 में एक स्मारिका प्रकाशित की। जिसमें जय प्रकाश नारायण, आर. वेंकटरमण, डॉ. राधाकृष्णन सहित लगभग 250 लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्तियों द्वारा लिखे गए लेख शामिल हैं।

2. एक वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी पी. वर्धाराजुलू को मद्रास में आंदोलन कर रहे मिल के मजदूरों को संबोधित करने के सिलसिले में राजद्रोह के आरोप में मद्रास सरकार ने गिरफ्तार किया था। उन पर मद्रास से 300 मील दक्षिण में स्थित मदुरै की एक अदालत द्वारा मुकदमा चलाया गया, उनकी गिरफ्तारी का विरोध कर रहे लगभग 3,000 लोगों ने न्यायालय के भीतर और आसपास तैनात सेना की परवाह किए बिना न्यायालय की तरफ रुख करना शुरू कर दिया। किसी राजद्रोह के मामले में मुकदमा केवल राज्यपाल की पूर्व मंजूरी के बाद ही आरंभ किया जा सकता है, जो कि उस मामले में राज्यपाल द्वारा तार (टेलीग्राम) से भेजी गई थी। राजाजी ने तर्क दिया कि टेलीग्राम उनकी मंजूरी को सिद्ध नहीं करता है। वह मुकदमा हार गए, लेकिन उच्च न्यायालय में अपील करने और जीतने में सफल रहे, जहां बैंच में तीन जज थे जिनमें दो अंग्रेज थे।

3. कल्कि आर. कृष्णमूर्ति का लेखकीय नाम था जो कि कल्कि पत्रिका के संपादक थे।

4. एक लोकप्रिय तमिल दैनिक जिसमें राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन और लघुकथाओं आदि से संबंधित मामलों पर लेख होते थे।

राजाजी के चुनिंदा प्रकाशन (सभी भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित)

1. रामायण
2. महाभारत
3. थिरुक्कुरल
4. भजगोविंदम
5. डियर रीडर
6. जेल डायरी